Year 14, Issue 54
April-June, 2017

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर

भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १४ - अंक ५४, अप्रैल-जून २०१७

यश

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

मेरे मन
तुमने कहा था कभी -
रोना कायरता है
आगे बढ़ो
जीवन यही है

और मैं बढ़ता रहा
पथ पर
चढ़ता रहा आकाश पर
अनजानी डगर पर
पर यह प्रगति आज
मुझे अकेला छोड़ गई

सहसा मेरा यश जागा
और बोला -
तुम अकेले नहीं हो
मेरे मित्र
इतने बड़े विश्व में
मैं भी तुम्हारे साथ हूँ
यश हूँ न?
संघर्ष और पीड़ा में पला
तुम्हारा अपना यश!

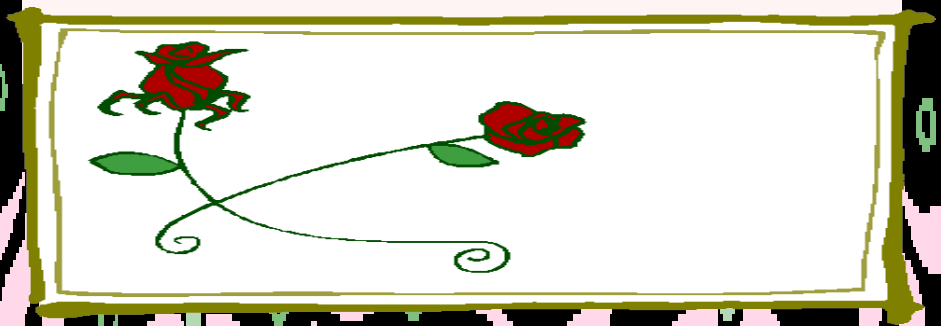

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
अटल बिहारी वाजपेयी एक कवि हृदय राजनेता	पद्म विभूषण लालकृष्ण आडवाणी	३
संघर्ष	डॉ. स्नेह ठाकुर	११
हिन्दी व साहित्य सम्बन्धी अवधारणा	पं. केशरी नाथ त्रिपाठी	१२
नेह का दीप जला	डॉ. स्नेह ठाकुर	१५
जन्में थे क्यों राम?	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	१७
उत्तराधिकार	पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली	१९
सुबह	संजय वर्मा	२५
उनका मिलना	रमेश जोशी	२६
ग़ज़ल	दिनेश कुमार 'डीजे'	२७
देश हमारा है, तो हम किसके हैं?	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	२८
मकाँ बनते गाँव	अरुण तिवारी	३०
वृंदा ने कहा था	कमल कपूर	३१
संस्कृत ब्रह्म वाणी क्यों है	डॉ. मृदुल कीर्ति	३६
मुक्तक	सरिता पन्थी	३८
अनोखा साथी	डॉ. स्नेह ठाकुर	३९
यश	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१ अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00

डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

परिवर्तन शाश्वत् नियम है. समय का पहिया घूमता ही रहता है. कैनेडावासियों के लिए अप्रैल माह का आगमन बड़ा ही आनंददायी है क्योंकि इस समय, समय का चक्र उसे शिशिर के ठिठुरते अनुभवों से मुक्त कर वसंत की बाँहों के झूले में, आनंदित हो झूलने-झूमने की इज़ाज़त देता है. कामदेव अपने सोलह श्रृँगार सहित फूलों का धनुष-वाण लिए जन-मानस को मोहित कर आनंद-सागर में आलोड़ित करने आ पहुँचा है.

वैसे तो इस समय जहाँ-तहाँ विभिन्न रंगों के ट्यूलिप वसंत की मद-मस्त बयार में झूमते अपने नन्हें-नन्हें सिर उठा, शिशिर की कठोरता से कठोर हुई धरती की भी परवाह न कर नटखट बच्चों की तरह हर आँगन-मैदान, घर के चौबारे-चारदीवारी में अठखेलियाँ कर खिलखिलाते नज़र आएँगे. हर जगह ही ट्यूलिप की बहार ही बहार है. पर इस समय देश की राजधानी ऑटवा में तो ट्यूलिप का आगमन एक बहुत बड़े महोत्सव में परिवर्तित हो जाता है. देश-विदेश से लोग इन्हें देखने व इस समय का लुत्फ़ उठाने यहाँ एकत्रित होते हैं. हॉलैंड के बाद कैनेडा का ऑटवा शहर ही ट्यूलिप की मनोरम छटा के लिए विख्यात है.

ट्यूलिप की छटा के साथ ही साथ ट्यूलिप की कथा भी पर्यटकों को रोमांचित करती है. ऑटवा में हर वसंत ऋतु में एक तीन परतों में लिपटा हुआ ड्रामा अपने जीवंत रंगों में परत-दर-परत खुलता है. इसकी शुरुआत युद्ध की पृष्ठभूमि से हुई जो सहृदयता में पनपी और जिसका उपसंहार 'प्रशंसात्मक धन्यवाद' में हुआ. द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान नैदरलैण्ड्स की राजकुमारी जुलियाना को अपना देश छोड़ना पड़ा. कैनेडा ने उनका और उनके परिवार का स्वागत किया व उन्हे ऑटवा में सुरक्षा प्रदान की.

जब राजकुमारी जुलियाना, कैनेडियन सैनिकों की सहायता से स्वतंत्र किए गए अपने देश वापस लौटीं और राजसिंहासन पर विराजमान हुईं तब उन्होंने कैनेडा और कैनेडावासियों को, उनके आदर-सत्कार का, अपने देश को परतंत्रता की बेड़ियों से स्वतंत्र कराने के सहयोग में उनकी सहायता का, आभार प्रदर्शन करने हेतु धन्यवाद के शब्दों के साथ एक अनूठी भेंट दी.

रानी जुलियाना ने न केवल १००,००० ट्यूलिप बल्बस् ऑटवा भेजे वरन् एक ऐसी प्रथा भी चलाई कि तब से हर साल दस हज़ार ट्यूलिप बल्बस् वहाँ से ऑटवा आते हैं. और इस तरह ये रंग-बिरंगे जीवंत फूल हर साल मस्त पवन के मदमाते झोकों में लहरा-लहराकर राजकुमारी मारग्रीटा की जन्म-कथा, कैनेडावासियों की उदारता व रानी जुलियाना की धन्यवाद-स्वरूप अनूठी भेंट का गुणगान करते हुए कैनेडा की राजधानी ऑटवा की धरती को वसंत ऋतु के आगमन पर लाल, पीले, जामुनी, नारंगी, सफ़ेद, गुलाबी, विभिन्न रंगों से पाट कर सजा देते हैं.

कैनेडावासियों ने इस उपहार को साठ वर्षों से भी ज़्यादा समय से एक महोत्सव के रूप में परिवर्तित कर दिया है. हर वर्ष मई का महीना ऑटवा में ट्यूलिप फ़ेस्टिवल के रूप में मनाया जाता है.

यह महोत्सव न केवल इतिहास की याद ताज़ा करता है वरन् इसके साथ-साथ ऑटवा निवासियों में एक नई स्फूर्ति भर देता है. यहाँ की सर्दी का मौसम कुछ लंबा ही होता है. ठण्ड भी कुछ कड़ाके की ही पड़ती है. शिशिर के इस प्रहार से प्रताड़ित जब ऑटवा-निवासी उभरने की प्रक्रिया में होता है, तब वसंत के कामदेव का इन करोड़ों खूबसूरत फूलों के साथ आगमन उसे मद-मस्त कर विभोर कर देता है. प्रकृति शिशिर की कठोरता झेलने के उपलक्ष में यहाँ के निवासियों को इन रंग-बिरंगे नयनाभिरामों से उपकृत करती है. इससे बड़ा उपहार और क्या हो सकता है! ठण्ड से ठिठुरते अंगों को सहलाने के लिए धरती की छाती से निकले इन करोड़ों रंग-बिरंगे, मादक, मनमोहक पुष्पों की छटा अवर्णनीय है. इस सुंदरतम छटा को देख आँखें और मन बरबस ही जुड़ा जाता है, और शीतकाल की कठोरतम स्मृति अतीत के किसी कोने में सिर झुका कर बैठ जाती है.

नव वसंत का आगमन अपनी ऊर्जा, अपनी प्रेरणा से हमें भी जन-कल्याण हेतु प्रेरित करे. आतंक-मुक्त जीवन, समाज और विश्व की कामना और तदनुसार आचरण के प्रति जन-जन संकल्पित हो, इसी आशा को मन-प्राण में सँजोए,

सस्नेह, स्नेह ठाकुर

अटल बिहारी वाजपेयी
एक कवि हृदय राजनेता

पद्म विभूषण लालकृष्ण आडवाणी

(भारत के पूर्व प्रधान मंत्री माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को भारत रत्न से सम्मानित किया गया है, बधाई देते हुए उनके प्रति उन्हीं के परम मित्र माननीय श्री लाल कृष्ण आडवाणी जी के विचार - आडवाणी जी की पुस्तक "मेरा देश मेरा जीवन" से, जिसकी प्रस्तावना वाजपेयी जी ने लिखी है, आदरणीय एवं प्रिय आडवाणी जी की अनुमति से साभार - संपादक)

अटल बिहारी वाजपेयी के प्रति गौरवाञ्जलि

"टूटे हुए सपने की सुने कौन सिसकी?
अन्तर को चीर व्यथा पलकों पर ठिठकी।
हार नहीं मानूँगा, रार नई ठानूँगा।
काल के कपाल पर लिखता-मिटाता हूँ।
गीत नया गाता हूँ।" अटल बिहारी वाजपेयी

यदि मुझे ऐसे किसी एक व्यक्ति का नाम लेना हो, जो प्रारम्भ से अब तक मेरे पूरे राजनीतिक जीवन का अंतरंग हिस्सा रहे, जो लगभग पचास वर्ष तक इस पार्टी में मेरे सहयोगी रहे तथा जिनका नेतृत्व मैंने सदैव नि:संकोच भाव से स्वीकार किया तो वह नाम 'अटल बिहारी वाजपेयी' का होगा. अनेक राजनीतिक पर्यवेक्षक यह पाते हैं कि ऐसा विरले ही है कि स्वतंत्र भारत के राजनीतिक इतिहास में, राजनीतिक क्षेत्र में दो प्रभावशाली व्यक्तियों के बीच इतनी घनिष्ठ मैत्री का समतुल्य उदाहरण मिलता हो जिन्होंने एक ही संगठन में इतने लम्बे समय तक भागीदारी की इतनी उत्कट भावना के साथ मिलकर काम किया हो. इस पुस्तक के प्रारम्भ में वर्ष १९५२ में राजस्थान में लिया गया अटल जी, भैरों सिंह शेखावत तथा मेरा फ़ोटो दिया गया है. साथ ही हिन्दी के प्रमुख पत्र 'दैनिक जागरण' में वर्ष २००३ में हम तीनों का लिया गया फ़ोटो दिया गया है. नीचे लिखी पंक्ति है - 'आधी शताब्दी से अधिक समय तक मिल कर काम करते हुए'. मैं अटल जी के साथ इस मैत्री को अपने राजनीतिक जीवन का गौरवमय तथा अमूल्य खज़ाना मानता हूँ.

पहला प्रभाव : चिरस्थायी प्रभाव - मैं पहली बार सन् १९५२ के उत्तरार्ध में अटल जी से मिला था. भारतीय जनसंघ के युवा सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में वे राजस्थान में कोटा से गुज़र रहे थे. वहाँ पर मैं संघ का प्रचारक था. रेल में वह डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के साथ थे, जो नवगठित पार्टी को लोकप्रिय बनाने के लिए रेलयात्रा पर निकले थे. उन दिनों अटल जी डॉ. मुकर्जी के राजनीतिक सचिव थे. अतीत की ओर देखता हूँ तो मेरे मन में उनका सबसे ज़्यादा जीवंत चित्र युवा राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में उभरता है, जो उस समय मेरे जैसे कृशकाय थे; लेकिन मैं ज़्यादा दुबला दिखाई देता था, क्योंकि मैं ज़्यादा लम्बा था. मैं आसानी से यह बता सकता हूँ कि उनमें आदर्शवाद की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी तथा उनके चारों ओर एक कवि का प्रभामंडल व्याप्त था, जिसे नियति ने राजनीति की ओर प्रवृत्त कर दिया. उनके भीतर कुछ सुलग रहा था और इस अग्नि की दीप्ति उनके मुखमंडल पर छाई हुई थी. उस समय उनकी आयु सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष रही होगी. इस पहली यात्रा के अंत में मैंने स्वयं से कहा कि यह असाधारण युवक है तथा मुझे इसके बारे में जानना चाहिए.

सन् १९४८ में अटलजी राष्ट्रवादी साप्ताहिक पत्र 'पाञ्चजन्य' के संस्थापक संपादक बने. उनके नियमित पाठक के रूप में मैं उनके नाम से पहले ही परिचित था. वस्तुत: मैं उनके सशक्त संपादकीय

लेखों तथा समय-समय पर इस पत्र में प्रकाशित कविताओं से बहुत ज़्यादा प्रभावित रहा. इस पत्र के माध्यम से मुझे पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की जानकारी मिली, जिन्होंने राष्ट्रवादी साहित्य के गरिमामय प्रकाशक 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन' के अंतर्गत यह पत्र प्रकाशित किया था. मुझे बाद में पता चला कि अटलजी के साथ वे इस साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन में बहुमुखी भूमिकाएँ निभाते थे. वे प्रूफ़ रीडर, कंपोजिटर, बाइंडर तथा मैनेजर की ज़िम्मेदारी निभाते हुए पत्रिका में नियमित रूप से अनेक उपनामों से लिखा भी करते थे. मेरे जैसे किसी व्यक्ति के लिए जिसने अभी हाल ही में हिन्दी सीखी थी, 'पाञ्चजन्य' भाषा के नैसर्गिक सौंदर्य तथा शुद्धता का अनुभव कराने के लिए उपयोगी माध्यम रहा. इसके अलावा, इस पत्र में देशभक्ति की प्रेरणा देने की अद्‌भुत क्षमता थी.

कुछ समय बाद अटलजी अकेले राजस्थान के राजनीतिक दौरे पर आए. पूरी यात्रा के समय मैं उनके साथ रहा. इस यात्रा के दौरान मैं उन्हें बेहतर ढंग से जान पाया. दूसरी बार में, उनके बारे में बनी धारणा और अधिक बलबती हो गई. उनका अनूठा व्यक्तित्व, असाधारण भाषण शैली, उनका हिन्दी भाषा पर अधिकार तथा वाक्‌-चातुर्य और विनोदपूर्ण तरीके से गम्भीर राजनीतिक मुद्दों को प्रभावशाली ढंग से मुखरित करने की क्षमता - इन सभी गुणों का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा, दूसरे दौरे की समाप्ति पर मैंने अनुभव किया कि वह नियति पुरुष एवं ऐसे नेता हैं, जिसे एक दिन भारत का नेतृत्व करना चाहिए.

लम्बी राजनीतिक यात्रा के सहयात्री - डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के बाद उस समय जनसंघ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति पं. दीनदयाल उपाध्याय थे. अटलजी के प्रति उनके भी उच्च विचार थे तथा मई १९५३ में डॉ. मुकर्जी की त्रासद मृत्यु के बाद उन्होंने अटलजी को पार्टी तथा संसद की महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी सौंपी. थोड़े ही समय में अटलजी ने स्वयं को पार्टी के सर्वाधिक करिश्माई नेता के रूप में सिद्ध कर दिया. हालाँकि काँग्रेस जैसे विशालकाय वृक्ष के सामने जनसंघ एक छोटा-सा पौधा था; लेकिन ऐसे स्थानों पर भी लोगों की भीड़ अटलजी का भाषण सुनने के लिए टूट पड़ती थी, जहाँ पर पार्टी की जड़ें जमी भी नहीं थीं. वक्तृत्व शैली के अलावा जन-साधारण उनसे इस कारण भी प्रभावित था कि वे राष्ट्रीय मुद्दों पर काँग्रेस तथा कम्युनिस्ट पार्टी से भिन्न विकल्प प्रस्तुत करते थे. इस प्रकार युवावस्था में ही उनमें राष्ट्रव्यापी अपील के साथ होनहार जन-नायक के रूप में उभरने के सभी संकेत नज़र आने लगे थे.

सन्‌ १९५७ में संसद्‌ में अटल जी के निर्वाचित होने के बाद दीनदयालजी ने एक अन्य कदम उठाया, जिसका संबंध मुझसे था. दीनदयालजी ने मुझसे कहा कि राजस्थान से दिल्ली जाएँ और संसदीय कार्यों में अटलजी की मदद करें. तब से अटलजी और मैंने जनसंघ के विकास तथा बाद में भाजपा के विकास के लिए प्रत्येक स्तर पर मिलकर कार्य किया है. लोकसभा में प्रवेश के थोड़ी देर बाद ही अटलजी संसद्‌ में पार्टी की आवाज़ बन गए. संख्या में कम होते हुए भी उन्होंने सभी पर अपना प्रभाव बनाया. एक दशक बाद, फरवरी १९६८ में दीनदयालजी की दु:खद मृत्यु के बाद उन्हें पार्टी की अध्यक्षता का उत्तरदायित्व भी सँभालना पड़ा. पार्टी के इतिहास में यह अत्यंत विकट दौर था; लेकिन अटलजी शीघ्र ही ऐसे सक्षम नेता के रूप में उभरे, जिन्होंने जनसंघ को इस गहरे दलदल से उबार लिया. उस समय यह नारा हमारी पार्टी के कार्यकर्ताओं तथा समर्थकों के बीच व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ - 'अँधेरे में एक चिनगारी, अटल बिहारी, अटल बिहारी'.

पाँच वर्ष बाद, सन्‌ १९७३ में उन्होंने पार्टी की संगठन सम्बन्धी ज़िम्मेदारी मुझे सौंपी. पार्टी को मज़बूत बनाने के काम में अटलजी, नानजी देशमुख, कुशाभाऊ ठाकरे, सुंदरसिंह भंडारी तथा अन्य के साथ प्रगाढ़ मैत्री मेरी राजनीतिक यात्रा का अभिन्न अंग रही. जब इन्दिरा गाँधी ने जून १९७५ में

आपातकाल की घोषणा की तब जनसंघ पहले ही मज़बूत तथा सर्वाधिक संगठित विपक्षी दल के रूप में स्थापित हो चुका था. इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी, जब इस पार्टी ने जयप्रकाश नारायण का विश्वास जीत लिया तथा यह साझे मंच पर जुटाए गए लोकतंत्र समर्थक सेनानियों का सर्वाधिक उत्साह एवं उमंग भरा जत्था बन गई. पुन: अटलजी एवं मैंने मिलकर संघर्ष किया तथा जेल गए और आपात-स्थिति हटने के बाद जनता पार्टी के गठन के लिए मिलकर कार्य किया. वस्तुत: इसके बाद जयप्रकाश नारायण का स्वास्थ्य बिगड़ने के बाद (८ अक्टूबर, १९७९ को वे चल बसे) जनता पार्टी की एकता तथा इसकी सरकार की स्थिरता के लिए अटलजी और मैंने जितना परिश्रम एवं दृढ़तापूर्वक कार्य किया, उतना और किसी ने नहीं किया.

लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि जनता पार्टी की एकता बनाए रखने के लिए हमारे प्रयासों की परिणति यह हुई कि, 'दोहरी सदस्यता के मुद्दे' के बहाने हमें इस पार्टी से निकाल दिया गया. सन् १९८० में अटलजी ने और मैंने पुन: अन्य साथियों के साथ भाजपा की स्थापना की. यह सही है कि लोकसभा के वर्ष १९८४ के चुनावों में हमारी पार्टी को निराशा हाथ लगी. हमने सिर्फ़ २ सीटें जीतीं. यहाँ तक कि ग्वालियर से अटलजी चुनाव हार गए. तथापि इस हार का मुख्य कारण इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद देश में उत्पन्न 'सहानुभूति लहर' रही. यह वास्तव में लोकसभा का चुनाव नहीं बल्कि 'शोक सभा' का चुनाव था, जहाँ सारी सहानुभूति राजीव गाँधी के साथ रहनी स्वाभाविक थी.

इसके बाद भाजपा की आकस्मिक प्रगति का माध्यम 'अयोध्या आंदोलन' रहा. इस समय अटलजी ने अपेक्षाकृत कम सक्रिय रहने का निर्णय लिया. तथापि मुझे इस बारे में कोई संदेह नहीं था वर्ष १९९६ में केंद्र में स्थिर सरकार बनाने की असफलता से लेकर (१९९६ में अटलजी केवल तेरह दिन तक प्रधानमंत्री रहे) १९९८ में पुन: मिली सफलता तक की पार्टी की यात्रा का श्रेय मुख्यत: अटलजी की व्यक्तिगत लोकप्रियता को जाता है. इससे पार्टी का जनाधार कई गुना बढ़ गया. पुन: हम दोनों ने राजग के गठन के लिए मिलकर कार्य किया. ऐसा करते समय हमने 'राजनीतिक अस्पृश्यता' की बेड़ियाँ तोड़ दीं, जिनसे काँग्रेस तथा कम्युनिस्ट पार्टी ने हमें बाँधने की कोशिश की थी.

वर्ष १९९० में अयोध्या आंदोलन के लिए समर्थन जुटाने हेतु मेरे द्वारा राम रथयात्रा का श्रीगणेश किए जाने के बाद मीडिया ने अटलजी और मुझे अलग-अलग ढंग से पेश करना शुरू किया. अटलजी को उदार बताया गया, वहीं मुझे 'कट्टर हिंदू'. प्रारम्भ में इससे मुझे बहुत पीड़ा पहुँची, क्योंकि मैं जानता था कि यथार्थ मेरी इस छवि के एकदम विपरीत है. मुझे मीडिया में मित्रों तक अपनी भावनाएँ पहुँचाने तक कठिनाई हो रही थी तथा तब मेरी पार्टी के कुछ सहयोगियों ने, जो अपनी छवि के प्रति मेरी संवेदनशीलता से परिचित थे, मुझे सलाह दी कि इस समस्या के बारे में चिंता न करें. उन्होंने कहा, 'आडवाणीजी, वास्तव में इससे भाजपा को दोनों प्रकार के नेताओं की छवि से लाभ होगा, जिसमें एक नेता उदार है और दूसरा कट्टर हिंदू.'

'हवाला कांड' में लगाए गए मिथ्या आरोप के चलते मैंने घोषणा की कि जब तक न्यायपालिका मेरे ऊपर लगाए मिथ्या आरोपों से मुझे मुक्त नहीं कर देती तब तक मैं दोबारा लोकसभा में नहीं आऊँगा. इसलिए मैंने वर्ष १९९६ के संसदीय चुनावों में प्रत्याशी बनने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया. अटलजी ने अपने पारम्परिक निर्वाचन क्षेत्र लखनऊ के साथ-साथ गुजरात में गाँधीनगर से भी चुनाव लड़ा. मैं अपने प्रति सार्वजनिक रूप से दर्शाए गए उनके विश्वास और सौहार्द्रता से भवविभोर हो गया. आशा के अनुरूप अटलजी भारी मतों से दोनों निर्वाचन क्षेत्रों से जीत गए. बाद में उन्होंने लखनऊ से अपनी सदस्यता बनाए रखते हुए गाँधीनगर की सीट से त्यागपत्र दे दिया था; लेकिन उनके व्यवहार से पार्टी में ऊर्जा-शक्ति का संचार हुआ तथा व्यापक स्तर पर जनता तक सही-सही यह संदेश पहुँचा कि

भाजपा के शीर्ष स्तर पर मज़बूत एकता है. यही संदेश वर्ष १९९५ में मुंबई में पार्टी के महाधिवेशन से भी निकला, जब पार्टी अध्यक्ष के नाते मैंने आनेवाले वर्ष में संसदीय चुनावों में भाजपा के प्रधानमंत्री पद के प्रत्याशी के रूप में अटलजी के नाम की घोषणा की थी.

मैंने यह घोषणा क्यों की? उस समय बड़ी निराधार अटकलें लगाई जा रही थीं. कुछ अटकलें आज भी लगाई जाती हैं, जो कष्ट पहुँचाती हैं. पार्टी तथा संघ के कुछ लोगों ने तब मेरी इस घोषणा के लिए मुझे झिड़का. उन्होंने कहा, 'हमारे अनुमान से यदि पार्टी जनादेश प्राप्त करती है तो सरकार चलाने के लिए आप ही बेहतर होंगे.' मैंने पूर्ण ईमानदारी और दृढ़ विश्वास से जवाब दिया कि मैं उनके विचार से सहमत नहीं हूँ. 'जनता के परिप्रेक्ष्य में मैं जननायक की तुलना में विचारक अधिक हूँ. यह सही है कि भारतीय राजनीति में अयोध्या आंदोलन में मेरी छवि बदली थी. लेकिन अटलजी हमारे नेता है, नायक हैं. जनता में उनका ऊँचा स्थान है तथा नेता के रूप में जन-साधारण उन्हें अधिक स्वीकार करता है. उनके व्यक्तित्व में इतना प्रभाव और आकर्षण है कि उन्होंने भाजपा के पारम्परिक वैचारिक आधार वर्ग की सीमाओं को पार किया है. उन्हें न केवल भाजपा की सहयोगी पार्टियाँ ही स्वीकार करती, बल्कि इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारत की जनता उन्हें स्वीकार करती है.' इनमें से कुछ का आग्रह था कि मैंने यह घोषणा करके महान् त्याग किया है. तथापि मैं अपनी बात पर स्थिर था, 'मैंने कोई त्याग नहीं किया है. यह पार्टी एवं राष्ट्र के सर्वोत्तम हित के युक्तियुक्त आकलन का परिणाम है.'

अपने अन्य सहयोगियों के साथ हम दोनों ने वर्ष १९९८ में भाजपा को सत्ता में लाने के लिए मिलकर कार्य किया. मैंने सरकार में उनके सहायक के रूप में कार्य किया. जब २९ जून, २००२ (मैं भारत का सातवाँ उपप्रधानमंत्री बना. इससे पहले सरदार वल्लभभाई पटेल, मोरारजी देसाई, चरण सिंह, जगजीवन राम, वाई. बी. चव्हाण तथा देवी लाल उपप्रधानमंत्री बने थे.) को मुझे उपप्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था, तब इस संबंध को औपचारिक रूप मिला. मैंने उस दिन मीडिया से कहा था, 'यह मेरे लिए सम्मान की बात है तथा मैं प्रधानमंत्री और राजग के अपने सभी सहयोगियों को धन्यवाद देना चाहता हूँ.' मैंने यह भी कहा, 'लेकिन इससे मेरे कार्य में कोई अन्तर नहीं आएगा. प्रधानमंत्री जी पहले ही मेरे साथ परामर्श करते थे और मैं पहले भी ऐसे ही कार्य करता था. हाँ, जनता की दृष्टि में तथा मेरे मंत्रिमंडल के साथियों की दृष्टि में मेरी जिम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं.' मैंने ऐसी अटकलों का भी खंडन किया, जो मीडिया तथा राजनीतिक क्षेत्रों में कुछ विरोधी तत्त्वों ने फैलाई थीं, जिनके अनुसार, उपप्रधानमंत्री के रूप में मेरी औपचारिक तरक्की से समानांतर सत्ता के केंद्र का सृजन हो जाएगा.

वर्ष २००२ का राष्ट्रपति चुनाव - वर्ष २००२ के प्रारम्भ में भाजपा तथा राजग के बीच इस बारे में विचार-विमर्श आरंभ हो गया कि भारत के नए राष्ट्रपति के लिए चुनाव में हमारा प्रत्याशी कौन हो, क्योंकि जुलाई के अंत में डॉ. के.आर. नारायणन का कार्यकाल समाप्त होने जा रहा था. हमारे आंतरिक विचार-विमर्श के दो मानदंड थे. पहला, नया राष्ट्रपति उदात्त व्यक्ति होना चाहिए तथा वह हर दृष्टि से इस भव्य एवं गरिमामय पद को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हो; दूसरे, हम भाजपा से इतर व्यक्ति को प्राथमिकता दे रहे थे, क्योंकि हमारी यह प्रबल इच्छा थी कि राष्ट्र तक हमारा यह संदेश पहुँचे कि हमारी पार्टी सभी को साथ लेकर चलने में विश्वास रखती है.

आश्चर्य है कि इस तलाश में ऐसे प्रत्याशी का नाम निकला, जिसका हमारी पार्टी से कोई वास्ता नहीं था, बल्कि जो दो पूर्व प्रधानमंत्रियों - इन्दिरा गाँधी एवं राजीव गाँधी - से जुड़े रहे. ये दोनों प्रधानमंत्री काँग्रेस पार्टी के थे. यह प्रत्याशी महाराष्ट्र के गवर्नर डॉ. पी.सी. अलेक्जेंडर थे. सबसे पहले मैंने अटलजी तथा राजग के अन्य प्रमुख नेताओं को डॉ. अलेक्जेंडर का नाम सुझाया था. गवर्नर के रूप

में कार्य करने की दृष्टि से मैं उनसे अत्यधिक प्रभावित था और अटलजी भी उनसे प्रभावित थे. मेरा सुझाव तत्काल मान लिया गया. राजग की विभिन्न पार्टियों के अन्य नेताओं ने बड़े उत्साह से उनका नाम स्वीकार किया. लेकिन डॉ. अलेक्जेंडर के प्रत्याशी के रूप में खड़ा होने पर काँग्रेस से उठे विरोध के कारण राजग ने अन्य लब्धप्रतिष्ठ प्रत्याशी डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को डॉ. नारायणन के उत्तराधिकारी के रूप में चुना.

मैं यहाँ पर उस समय घटित रोचक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा. एक दिन मुझे संघ के पूर्व सरसंघचालक प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) का फ़ोन आया. उन्होंने कहा कि वे मुझसे एक महत्वपूर्ण विषय पर बात करना चाहते हैं. मैंने उन्हें अगली सुबह घर आने के लिए आमंत्रित किया. नाश्ते पर उन्होंने पिछली शाम अटलजी के साथ हुई बैठक का ब्योरा बताया, 'मैं राष्ट्रपति चुनाव के मुद्दे पर विचार करने के लिए प्रधामन्त्री के पास गया था. मैंने उन्हें सुझाव दिया, आप ही क्यों नहीं राष्ट्रपति बनते? मैंने इस सुझाव के पीछे निहित कारण बताए. मुख्यत: घुटनों की परेशानी की दृष्टि से (प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी का वर्ष २००० तथा २००१ में ब्रीच कैंडी अस्पताल, मुंबई में घुटनों का दो बार ऑपरेशन हुआ था.) राष्ट्रपति भवन की जिम्मेदारी उठाने में उन्हें अधिक भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ेगी. इसके अलावा, लोग व्यक्तित्व तथा अनुभव की दृष्टि से उन्हें आदर्श रूप में स्वीकार करेंगे.

मैंने उनसे पूछा कि अटलजी ने क्या जवाब दिया? रज्जू भैया ने कहा कि 'अटलजी चुप रहे. उन्होंने 'हाँ' या 'ना' कुछ नहीं कहा. इसलिए मैं सोचता हूँ कि उन्होंने मेरा सुझाव अस्वीकार नहीं किया.' तब मैंने रज्जू भैया को बताया कि राष्ट्रपति चुनाव के मुद्दे पर चर्चा करने के लिए बैठक हुई थी तथा सर्वसम्मति से राजग नेताओं की औपचारिक रूप से तीन दिन पहले इस बैठक में प्रधानमंत्री को उपयुक्त, राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य प्रत्याशी के नाम को अंतिम रूप देने के लिए अधिकृत किया गया है. अंत में, इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति ने सर्वसम्मति से अटलजी का निर्णय स्वीकार किया.

परस्पर विश्वास एवं सम्मान में बनते रिश्ते - मुझे अनुभवों ने सिखाया है कि राजनीति में स्थायी और अर्थपूर्ण रिश्ते तभी संभव हैं जब परस्पर, विश्वास, सम्मान और एक निश्चित उदात्त ध्येय के लिए प्रतिबद्धता हो. सत्ता के खेल से प्रेरित होकर राजनीति स्पर्धात्मक और कलहपूर्ण होती है. लेकिन साझी विचारधारा से प्रेरित तथा आदर्शों और संस्कारों से संपोषित राजनीति इससे बिल्कुल भिन्न होती है. जब किसी उच्चतर प्रयोजन से लोग एक सूत्र में बँधते हैं तो ये लोग छोटे मसलों तथा व्यक्तित्व से संबंधित मुद्दों को नज़रअंदाज़ करना सीख जाते हैं. अनेक लोगों ने मुझसे पूछा है कि आपके और अटलजी के बीच पचास वर्ष से भी ज़्यादा अवधि तक भागीदारी कैसे चली है? उनके साथ आपका कोई मतभेद या कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई?

मैं इस प्रश्न में अंतर्निहित उलझन को भली प्रकार से समझ सकता हूँ. लेकिन कुछ लोगों के ऐसे विचारों के विपरीत, मैं पूरी ईमानदारी से कहना चाहूँगा कि दशकों से मेरे और अटलजी के बीच संबंधों में कभी स्पर्धा की भावना नहीं रही. इसका निहितार्थ यह नहीं है कि हमारा कभी मतभेद नहीं रहा. हाँ, कभी-कभी हम दोनों के विचार अलग-अलग रहे हैं. हमारे व्यक्तित्व अलग हैं. स्वाभाविक है कि अलग-अलग घटनाओं तथा मुद्दों पर कई बार हमारे विचार अलग-अलग रहे. आंतरिक लोकतंत्र को महत्व देने वाले किसी संगठन में यह स्वाभाविक है. तथापि हमारी इस प्रगाढ़ मैत्री के मूल में तीन कारक हैं. हम दोनों दृढ़तापूर्वक जनसंघ और भाजपा की विचारधारा, आदर्श और लोकाचारों से बँधे हुए थे, जिससे सभी सदस्य पहले स्थान पर राष्ट्र, उसके पश्चात् पार्टी तथा अंत में स्वयं को प्राथमिकता देते हैं. हमने कभी ऐसे मतभेदों को बढ़ावा नहीं दिया, जिससे परस्पर विश्वास और आदर का मूल्य कम

हो जाए. लेकिन तीसरा तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण कारक यह है कि मैंने स्पष्ट रूप से तथा निरपवाद रूप में अटल जी को अपना वरिष्ठ एवं अपना नेता स्वीकार किया था.

प्रारम्भिक अवस्था में ही मैंने संगठनात्मक और राजनीतिक मामलों में अटलजी के निर्णय को विनीत भाव से स्वीकार किया है. मैं अपने विचार रखता था; लेकिन जब अनुभव करता था कि अटलजी क्या चाहते हैं तो मैं निरपवाद रूप से उनके दृष्टिकोण का, विचार का समर्थन करता था या उन्हें प्राथमिकता देता था. मेरी प्रतिक्रियाओं का ऐसा पूर्वानुमान लगाया जाता था कि कभी-कभी पार्टी में मेरे सहयोगी या संघ के नेता उन पर अपनी नाराज़गी व्यक्त करने लगते थे; क्योंकि उनके विचार में, मुझमें अटलजी के निर्णयों से असहमति व्यक्त करने की क्षमता नहीं थी या मैं अपनी असहमति प्रकट नहीं करना चाहता था. तथापि मेरी इस धारणा पर ऐसे विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था कि पार्टी से तथा बाद में सरकार से संबंधित सभी मामलों पर अटलजी के वाक्य अंतिम होने चाहिए. दोहरा या सामूहिक नेतृत्व कभी भी 'एक नेता की कमान' से श्रेष्ठ नहीं हो सकता. मैं अपने साथियों को बताता था, 'मुखिया के बिना कोई परिवार टिक नहीं सकता. सभी सदस्यों को उसके आदेश को मानना चाहिए. दीनदयालजी के बाद अटल जी हमारे मुखिया हैं.'

यहाँ मुझे यह भी कहना है कि अटलजी का मेरे प्रति उदार दृष्टिकोण रहा. यदि वे जान जाते थे कि किसी विशिष्ट मुद्दे पर मेरा क्या विचार है, और यदि उनकी इस संबंध में गंभीर असहमति नहीं होती थी तो वे झट से कहते, 'जो आडवाणीजी कहते हैं, वह ठीक है.' इसके पश्चात् विचारार्थ विषय पर तत्काल निर्णय हो जाता था.

राजग सरकार की छह वर्षों की अवधि के दौरान मीडिया और कुछ राजनीतिक क्षेत्रों में 'अटल-आडवाणी विवाद' न होते हुए भी, इस बारे में अटकलें लगाना समय बिताने का रोचक विषय था. अटलजी ने अनेक अवसरों पर, संसद् के भीतर तथा बाहर, इन अटकलों का खंडन किया. 'इंडिया टुडे' में दिए गए एक साक्षात्कार में उनसे पूछा गया, 'एल.के. आडवाणी के साथ आपके कैसे संबंध हैं? क्या भाजपा अलग-अलग दिशाओं में चल रही है?' उन्होंने तपाक से जवाब दिया, 'मैं रोज़ आडवाणीजी से बात करता हूँ. हम प्रतिदिन परस्पर परामर्श करते हैं. फिर भी आप लोग ऐसी अटकलें लगाते हैं. एक बात और मैं कहना चाहता हूँ कि हमारे बीच ऐसी कोई समस्या नहीं है. जब होगी, मैं आपको बता दूँगा.'

कुछ मतभेद - मैं यहाँ दो उदाहरण देना चाहता हूँ, जब अटलजी और मेरे बीच काफी मतभेद उत्पन्न पैदा हुआ था. अयोध्या आंदोलन के साथ भाजपा के सीधे जुड़ने के बारे में उन्हें आपत्ति थी. लेकिन धारणा और स्वभाव से लोकतांत्रिक होने के नाते तथा हमेशा साथियों के बीच सर्वसम्मति लाने के इच्छुक होने के कारण अटलजी ने पार्टी का सामूहिक निर्णय स्वीकार किया.

दूसरा उदाहरण उस समय से जुड़ा है, जब फरवरी २००२ में गोधरा में कारसेवकों के व्यापक संहार के बाद गुजरात में सांप्रदायिक हिंसा भड़की थी. इस क्रूर घटना के बाद पड़ने वाले प्रभाव के कारण गुजरात सरकार, विशेषकर मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी, का प्रचंड विरोध किया गया. विरोधी पार्टियों ने मोदी के त्यागपत्र की माँग कर दी. हालाँकि भाजपा तथा सत्तारूढ़ राजग की गठबंधन सरकार में कुछ लोग सोचने लगे कि मोदी को अपना पद छोड़ देना चाहिए, फिर भी इस विषय में मेरा विचार बिल्कुल भिन्न था. गुजरात में समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों से बातचीत करने के बाद मैं सहमत हो गया कि मोदी को निशाना बनाना ठीक नहीं है. मेरी राय में, मोदी अपराधी नहीं थे बल्कि वे स्वयं राजनीतिक शिकार हो गए थे.

इसलिए मैंने अनुभव किया कि एक वर्ष से भी कम समय से पहले राज्य के मुख्यमंत्री बने नरेंद्र मोदी को जटिल सांप्रदायिक स्थिति का शिकार बनाना अन्यायपूर्ण होगा. ऐसा करके मैंने स्पष्ट किया

कि दीर्घकाल में इसका गुजरात के सामाजिक ताने-बाने पर बुरा प्रभाव पड़ेगा. मैं जानता था कि अटल जी को गुजरात की घटनाओं से गहरा कष्ट पहुँचा है. इस बात पर हमें गर्व था कि मार्च १९९८ में हमारी सरकार के गठन के समय से हमें देश में सांप्रदायिक हिंसा की घटनाओं में नाटकीय ढंग से कमी लाने में सफलता मिली. वर्ष २००२ से पहले हमारा कार्य-निष्पादन विपक्षी दलों के आरोपों के विपरीत रहा, जिनमें कहा गया था कि केंद्र में भाजपा के सत्ता में आने के बाद मुसलमानों और ईसाइयों पर व्यापक सांप्रदायिक हमले होंगे. वास्तव में अटलजी की सरकार ने न केवल भारत में मुसलमानों की ही, बल्कि विश्व भर के मुस्लिम देशों की भी सद्भावना जीती. अचानक गुजरात में सांप्रदायिक हिंसा भड़कने से केंद्र में पार्टी तथा सरकार के वैचारिक विरोधियों द्वारा की गई कटु निंदा से नुकसान पहुँचा.

इन परिस्थियों का अटलजी के मन पर काफी बोझ था. वे अनुभव करने लगे कि कुछ ठोस उपाय करने की जरुरत है, कुछ सकारात्मक कार्य करना है. इसी दौरान, मोदी से त्यागपत्र माँगने के लिए उन पर दवाब डाला जाने लगा. यद्यपि अटलजी ने इस विषय पर स्पष्ट रूप से विचार अभिव्यक्त नहीं किए; लेकिन मैं जानता था कि वे मोदी के त्यागपत्र का पक्ष लेंगे. वे यह भी जानते थे कि मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ.

अप्रैल २००२ के दूसरे सप्ताह में भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की गोवा में बैठक थी. मीडिया तथा राजनीतिक स्त्रोत इस बात पर केंद्रित थे कि पार्टी गुजरात के बारे में किस तरह से विचार-विमर्श करेगी और मोदी के भाग्य के बारे में क्या निर्णय लिया जाएगा. अटलजी ने कहा कि मैं नई दिल्ली से गोवा तक की यात्रा के समय उनके साथ रहूँ. विशेष विमान में प्रधानमंत्री के लिए निर्धारित जगह में हमारे साथ विदेशमंत्री जसवंत सिंह तथा संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री अरुण शौरी भी थे. दो घंटे की यात्रा के दौरान शुरू में हमारी परिचर्चा गुजरात पर ही केंद्रित रही. अटलजी ध्यानमग्न थे. थोड़ी देर के लिए नि:स्तब्धता छाई रही. तभी जसवंत सिंह द्वारा प्रश्न पूछने के साथ चुप्पी टूटी, 'अटलजी, आप क्या सोच रहे हैं?' अटलजी ने जवाब दिया, 'कम से कम इस्तीफ़े का ऑफर तो करते.' तब मैंने कहा, 'यदि नरेंद्र के पद छोड़ने से गुजरात की स्थिति में सुधार आता है तो मैं चाहूँगा कि उन्हें इस्तीफ़े के लिए कहा जाए. लेकिन मैं नहीं मानता कि इससे कोई मदद मिल पाएगी. मुझे विश्वास नहीं है कि पार्टी की राष्ट्रीय परिषद् या कार्यकारिणी इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगी.'

जैसे ही हम गोवा पहुँचे, मैंने नरेंद्र मोदी से बात की कि उन्हें त्यागपत्र देने का प्रस्ताव रखना चाहिए. वे तत्परता से मेरा सुझाव मान गए. जब राष्ट्रीय कार्यकारिणी में विचार-विमर्श आरम्भ हुआ, तब अनेक सदस्य अपने-अपने विचार रखने लगे. उन सभी के विचार सुनने के बाद मोदी बोलने के लिए उठे तथा गोधरा एवं गोधरा के बाद के घटनाक्रम का विस्तृत ब्योरा दिया. उन्होंने गुजतात में सांप्रदायिक तनाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी दी तथा स्पष्ट किया कि किस तरह से पिछले दशकों में बार-बार दंगे भड़कते रहे हैं. उन्होंने यह कहकर अपने भाषण का अंत किया, 'फिर भी, सरकार का अध्यक्ष होने के नाते मैं अपने राज्य में घटित होने वाले इस कांड की जिम्मेदारी लेता हूँ. मैं त्यागपत्र देने के लिए तैयार हूँ.'

जिस क्षण मोदी ने यह कहा, पार्टी के शीर्ष निर्णय लेने वाले निकाय के सैकड़ों सदस्यों तथा विशेष आमंत्रितों की प्रतिक्रिया की आवाज़ से सभागार गूँज उठा. सब लोग कह रहे थे, 'इस्तीफ़ा मत दो, इस्तीफ़ा मत दो.' तब मैंने अलग से इस विषय में पार्टी के वरिष्ठ नेताओं के विचारों का पता लगाया. निरपवाद रूप में हममें से प्रत्येक ने कहा, 'नहीं, उन्हें त्यागपत्र नहीं देना चाहिए.' प्रमोद महाजन जैसे कुछ नेताओं ने कहा, 'सवाल ही नहीं उठता.'

इस प्रकार से भारतीय समाज और राज्य में मतभेद उत्पन्न करने वाले इस मुद्दे पर पार्टी के भीतर बहस का अंत हो गया. हालाँकि गोवा में लिए गए पार्टी के निर्णय से देश के अनेक लोग खुश नहीं थे. फिर भी, यह भी सत्य है कि अपने समाज के बहुत बड़े हिस्से की इच्छा के अनुरूप हमने यह फ़ैसला लिया था. स्वयं गुजरात में अधिसंख्य लोगों ने इस निर्णय का अनुमोदन किया.

अक्सर राजनीति दुरूह विकल्प चुनती है. यह दुरूहता ऐसे मुद्दों तथा स्थितियों की जटिलता में ही निहित होती है, जिनका हमें सामना करना होता है. कठिन विकल्प कभी-कभी अरुचिकर या अप्रिय होता है. लेकिन मेरा विश्वास है कि जब कोई किसी निर्णय को सही मानता है, तब इस निर्णय पर अडिग रहने में संकोच नहीं करना चाहिए. वस्तुत: इतिहास ने पार्टी के इस निर्णय को न्यायसंगत ठहराया है कि उसने उस समय मोदी से त्यागपत्र नहीं माँगा.

फिर सुबह होगी - ऑस्कर वाइल्ड ने कहा है, 'स्मृति एक ऐसी डायरी है, जिसे हम सब हमेशा अपने साथ रखते हैं.' जब मैंने अटलजी की टिप्पणी के संबंध में इस 'डायरी' के पन्ने पलटे तो पाया कि मत-विभिन्नता की तुलना में मतैक्य की आवृत्ति अधिक हुई है तथा हम दोनों ने मिलकर जो कुछ किया, उससे मुझे असफलता की तुलना मे संतुष्टि अधिक मिली. यहाँ तक कि जब हमें सफलता नहीं मिली तब भी निराशा को हावी नहीं होने दिया. मेरा मानना है कि जीवन हमेशा व्यक्ति की उन स्मृतियों में संपोषित होता है, जब निराशा पर आशा, अँधेरे पर प्रकाश की विजय होती है. कष्ट भरी रात्रि के बाद नई सुबह आती ही है. अटलजी आशा की किरण रहे तथा उन्होंने पार्टी की लम्बी यात्रा में ऐसे मोड़ों पर दिशा प्रदान की.

जिन लोगों ने अटलजी के साथ मिलकर कार्य किया है, वे जानते हैं कि वे विनम्र तथा संवेदनशील नेता हैं, जिनकी आत्मा काव्य-सौंदर्य से अनुप्राणित है. उनके राजनीतिक व्यक्तित्व को काव्य की सौंदर्यानुभूति के बिना समीचीन रूप से समझा नहीं जा सकता. उनके सभी प्रशंसकों के समान मैं भी उनकी कविताओं से, ख़ास तौर पर पार्टी सम्मेलन तथा अन्य सार्वजनिक समारोहों में, स्वयं उनके द्वारा किए गए काव्य-पाठ से अत्यधिक प्रभावित हुआ. उदाहरण के लिए, उन्होंने आपातस्थिति के समय ऐसी कविता लिखी थी, जिसे दीनानाथ मिश्र ने भूमिगत पत्र 'जनवाणी' में प्रकाशित किया था. इस कविता में देशकाल-मनोवृत्ति को ही ग्रहण नहीं किया गया बल्कि इससे हमेशा लोकतंत्र के समर्थकों, इच्छुक लोगों को प्रेरणा मिलती रहेगी -

सत्य का संघर्ष सत्ता से, न्याय लड़ता निरंकुशता से
अँधेरे ने दी चुनौती है, किरण अंतिम अस्त होती है,
दाँव पर सबकुछ लगा है, रुक नहीं सकते,
टूट सकते हैं, मगर हम झुक नहीं सकते.

इसी तरह से अटल जी ने एक अन्य कविता युवावस्था में लिखी. यह कविता छोटी आयु में उनकी राष्ट्रवादी धारणाओं का दर्पण है. आज तक मैंने इतनी अधिक सशक्त एवं देश-भक्ति से ओत-प्रोत काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं देखी, जिसमे हिंदू गौरव परिलक्षित होता है -

होकर स्वतंत्र मैंने कब चाहा है कर लूँ जग को गुलाम
मैंने तो सदा सिखाया है करना अपने मन को गुलाम.
गोपाल-राम के नामों पर कब मैंने अत्याचार किए?
कब दुनिया को हिंदू करने घर-घर में नर-संहार किए?
कोई बतलाए काबुल में जाकर कितनी मस्जिद मैंने तोड़ीं?
भू-भाग नहीं, शत-शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय,

हिंदू तन-मन, हिंदू जीवन, रग-रग हिंदू मेरा परिचय.

जब मैं अतीत की ओर देखता हूँ, जब अनेकानेक स्थितियों में अटलजी के साथ बिताए गए समय को याद करता हूँ, उनके प्रति आदर-सम्मान व्यक्त करने के सर्वोत्तम तरीके पर विचार करता हूँ तो मुझे सबसे ज़्यादा उस क्षण की मधुर याद आती है, जब हमने वर्ष १९५९ में मिलकर फिल्म देखी थी. हम दोनों को हिन्दी फिल्म देखना बहुत अच्छा लगता था. वर्ष १९७० के दशक के मध्य तक हम प्राय: 'रीगल' तथा दिल्ली के अन्य थिएटरों में बड़े शौक से सिनेमा देखने जाते थे. दिल्ली नगर-निगम के उप-चुनावों में अटलजी और मैंने जनसंघ के सैकड़ों कार्यकर्ताओं के साथ कड़ी मेहनत की थी. हमारे सर्वश्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद हमारी पार्टी को जीत नहीं मिल पाई. परिणामत:, हम हताश थे. तब अटलजी ने मुझसे कहा, 'चलो, कोई सिनेमा देखने चलते हैं.' हम दोनों अनूठे अभिनेता एवं फिल्म निर्माता राजकपूर की फिल्म 'फिर सुबह होगी' देखने के लिए पहाड़गंज के 'इंपीरियल' थिएटर में चले गए.

यह फिल्म फ्योदोर दोस्तॉयव्स्की के बहुचर्चित उपन्यास 'क्राइम एंड पनिशमेंट' की विषय-वस्तु से प्रभावित थी. इस फिल्म की कहानी भारत के स्वातंत्र्योत्तर काल से संबंधित है. इसमें नेहरू काल के वायदों की पूर्ति न होने के कारण लोगों का भ्रम टूटना तथा गरीब के साथ होने वाला अन्याय दर्शाया गया है. तथापि इसमें जनता को धैर्य बरतने तथा आशा का दामन न छोड़ने का संदेश भी दिया गया है. इसका आशावादी संदेश, जो इस फिल्म के शीर्षक में निहित था - अटलजी और मेरे - हम दोनों के निराश मन के लिए उपयुक्त था.

बाद के वर्षों में अनेक अवसरों पर, विशेष तौर पर चुनावी हार के बाद, मैंने यह बात बताने के लिए इस घटना का उल्लेख किया है, जो मेरे जीवन का मूल तत्त्व एवं विश्वास बन गई है - 'यह कठिन समय भी गुज़र जाएगा'. वर्ष २००४ में लोकसभा के चुनावों में हमारी पार्टी की आशातीत एवं आकस्मिक पराजय भी ऐसा ही एक अवसर था. मुझे संदेह नहीं कि पराजय का यह अंधकार अगले संसदीय चुनावों में हमारी पार्टी की जीत की नई सुबह लेकर आएगा. ऐसी जीत, जिसे हम भारत की एकता, सुरक्षा, लोकतंत्र तथा विकास की महान् विजय में बदल देंगे.

संघर्ष

डॉ. स्नेह ठाकुर

संघर्ष ज़िंदगी का सार है
सफलता की सीढ़ी है
कुछ भी नहीं क़ाबिले-हासिल
गर चुनौतियों के चक्रव्यूह से न निकले जीवन.
हीरा बिन तराशे चमकता नहीं
पॉलिश रत्न की बिन रगड़ होती नहीं
सोना बिन अग्नि निखरता नहीं
बिन धुने कपास रूई बनती नहीं
इंसान भी तब तलक रहता है अधूरा आदमी
जब तलक वह संघर्षों के दौर से गुज़रता नहीं.

हिन्दी व साहित्य सम्बन्धी अवधारणा

पं. केशरी नाथ त्रिपाठी

(भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं हिन्दी के प्रबल पक्षधर, साहित्यकार, माननीय गवर्नर पश्चिम बंगाल, पं. केशरी नाथ त्रिपाठी जी की पुस्तक "समय-समय पर" विचार-संग्रह के हिन्दी व साहित्य सम्बन्धी अवधारणा परिशिष्ट से २०-१२-१९९८ को दिया गया भाषण जो आज भी समीचीन है, सटीक है, राम नवमी पर विशेष - आदरणीय एवं प्रिय त्रिपाठी जी की अनुमति से साभार - संपादक)

राम और कृष्ण भारत के जन-जन के आराध्य हैं, जन-मन के कंठहार हैं. ये दोनों हमारे जीवन के, हमारी संस्कृति के, हमारी आचार-संहिता के, धर्म के, दृष्टि के, योग के, योगक्षेम के, जनकल्याण के आदर्श चरित्र हैं. इनका चरित्र मानवीयता की चरम स्थिति है. उस तक पहुँचना, उन आदर्शों का संस्पर्श करना प्रत्येक भारतीय की चिराकांक्षा है किन्तु उन तक पहुँच पाना मानव के लिए असंभव-सा है इसलिए उनके चरित्र को, उनके व्यवहार को, उनकी कार्य-सारिणी को हम मानवेतर मानते हैं, दैवी कहते हैं, अलौकिक की संज्ञा से अभिहित करते हैं. उनके अलौकिक चरित्रों से परिचित कराने का कार्य किया है हमारे कवि मनीषियों ने. वाल्मीकि, वेदव्यास और तुलसीदास के नाम इस क्षेत्र में अग्रगण्य हैं.

तुलसीदास जी का शाश्वत ग्रंथ 'रामचरितमानस' अनेक दृष्टियों से अनुपम है, अलौकिक है, असाधारण है. इस ग्रंथ ने अनेक लोगों को पीएच.डी., डी.लिट् की उपाधियाँ दी हैं. अनेक व्यक्तियों को आजीविका दी है. अनेक को विद्वान बनाया है. वस्तुत: यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति और सभ्यता की आचार संहिता है. भारत के सच्चे स्वरूप को इसके माध्यम से जाना-पहचाना जा सकता है.

'रामचरितमानस' अनेक दृष्टियों से अनूठा ग्रंथ है. यह धर्म का ग्रंथ है, दर्शन का ग्रंथ है, भारतीयता का ग्रंथ है, राष्ट्रीयता का ग्रंथ है, शाश्वत् मूल्यों की स्थापना का ग्रंथ है, जीवंत और प्राणवन्त परम्पराओं का ग्रंथ है, और संक्षेप में कहें तो समग्र रूप से मानवता के चरम विकास का ग्रंथ है.

साधारण बोल-चाल की भाषा में लिखे हुए इस ग्रंथ में वस्तु तत्त्व अत्यंत गहन और गूढ़ है इसलिए इसकी व्याख्या के लिए, इसके अर्थ के अवगाहन के लिए, इसके प्रदाय के आकलन और मूल्यांकन के लिए देश में ही नहीं विदेशों में अनेक कार्यक्रम, समारोह, गोष्ठियाँ, संगोष्ठियाँ, विचारगोष्ठियाँ आयोजित होती रहती हैं. अपने देश में तुलसीदास के जन्म-स्थान राजापुर तथा कानपुर के प्रयाग नारायण शिवाला में प्रतिवर्ष नियमित रूप से समारोह आयोजित होते हैं, जिसमें मानस मर्मज्ञों के प्रवचन होते हैं तथा मानससेवियों को सम्मानित-अलंकृत किया जाता है. देश भर में इसी प्रकार के आयोजन होते रहते हैं.

पूर्व की भाँति दिनांक २०-१२-१९९८ को श्री प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर में मानस-संगम कार्यक्रम आयोजित किया गया था. अपने विद्वतापूर्ण भाषण में श्री त्रिपाठी ने रामचरितमानस में वर्णित चरित्रों को लेकर अपनी नई व्याख्याएँ, नई अर्धच्छटाएँ प्रस्तुत की थीं, जिनकी पर्याप्त सराहना हुई थी. उन्होंने अपने भाषण का आरम्भ इस रूप में किया था -

"डॉ. सुरेश ने मानचित्र की बात कही थी. मेरी आँख के सामने भी इस समय दो त्रिभुज लहरा रहे हैं. त्रिभुज का एक कोना है जम्मू और कश्मीर, दूसरा कोना है कोहिमा, मेघालय और उसके आगे तीसरा कोना है कन्याकुमारी. यह देश का त्रिभुज है. दूसरा त्रिभुज है तुलसी और राम, कृष्ण और गीता तथा हिन्दी. अगर दोनों त्रिभुजों को एक-दूसरे के ऊपर रख देना पड़े तो जो मानचित्र बनता है, उसका नाम है भारत.

बिना राम और तुलसी की रामायण के, बिना कृष्ण और गीता और हिन्दी के भारत की कल्पना नहीं की जा सकती, लेकिन हिन्दी इतनी समृद्ध होते हुए भी, भाषा-प्राचुर्य होते हुए भी, शब्द-सामर्थ्य और शब्द-अलंकृत होते हुए भी अपने को अनाथ पा रही है. डॉ. दुबे ने कुछ अनुभव आपके सामने रखे. जब मैं एक सरकारी कार्य से बैंकॉक गया, थाईलैण्ड में, तो वहाँ प्रवासी भारतीयों ने एक बैठक की. उस बैठक में संचालक ने कहा कि हम लोग अँग्रेजी में बात करते हैं और आपकी समझ में नहीं आएगी इसलिए इस कार्यक्रम का हिन्दी में संचालन कर रहा हूँ.

यह उपकार की भावना थी या हिन्दी को विदेश में भी अपने लोगों द्वारा गौण स्थान देने की भावना थी, मैं समझ नहीं पाया लेकिन उसी समय मेरे मन के अंदर एक दूसरे देश का चित्र आया जहाँ आज भी उस देश के सर्वोच्च पद पर आसीन होने के लिए हिन्दी जानना आवश्यक है, बल्कि प्रवाह के साथ हिन्दी बोलना आवश्यक है. ऐसी वहाँ के संविधान में व्यवस्था है. उस देश का नाम है सूरीनाम और आज इस मंच पर सूरीनाम से आए हुए कवियों और कवयित्रिओं का मैं अभिवादन करता हूँ."

श्री त्रिपाठी को हिन्दी से असीम लगाव है. हिन्दी उनका मन-प्राण-जीवन-निधि है. सरकारी स्तर पर की जा रही निरंतर उपेक्षा से वे मर्माहत हैं. उनकी यह पीड़ा प्राय: उनके भाषणों में मुखरित हो उठती है. सरकारी स्तर पर ही क्यों निजी स्तर पर भी उसका स्थान गौण कर दिया गया है. इस भाषण में भी उनकी यह पीड़ा अकस्मात् व्यक्त हो उठी -

"हिन्दी ने जहाँ से जन्म लिया, वही कोख शायद धीरे-धीरे उसे नकार रही है. अगर कोई माँ अपने पुत्र को नकारती है, तो सुपुत्र को और उसके वंशज को स्वाभाविक रूप से क्लेश होता है. कहीं न कहीं उस क्लेश की छोटी-सी मात्रा को लेकर हम सब आज यहाँ बैठे हैं. हिन्दी राजनीति का शिकार हो रही है. हिन्दी सामाजिक परिस्थितियों के कारण किसी शिकंजे में फँस गई है या हिन्दी इस देश की अर्थ नीति से जकड़ गई है, यह चिंतन का विषय है. देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ऐसा लगा था की हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी और राजभाषा भी. हिन्दी देश की राजभाषा हो, यह प्रस्ताव उत्तर भारत के किसी व्यक्ति ने नहीं किया. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने किया लेकिन अंतरिम व्यवस्था कुछ दिन तक चालू रहेगी इसका समर्थन करने वाले लोगों ने, जो उस समय देश के कर्णधार थे, कुछ समय तक अँग्रेजी को शासकीय भाषा बनाए रखने का अनुमोदन कर दिया और हमारी और आपकी संतुष्टि के लिए संविधान में प्रावधान कर दिया कि हिन्दी के संवर्धन के लिए शासन निरंतर प्रयासरत रहेगा. इतने वर्षों के बाद हिन्दी इस देश में आएगी और फिर शुरू हो गया राजनीति का विकृत खेल. लोग धीरे-धीरे हिन्दी को भुलाने की कोशिश करने लगे. हिन्दी इस देश का प्राण है, हिन्दी भारत की आत्मा है. हिन्दी से विदेशों में भारत की पहचान है. हम मूक और कहीं असहाय, समय की इस चाल को देखते रहे."

तत्पश्चात् रामचरितमानस के रूप में गोस्वामी तुलसीदास के पदों का नए रूप में आंकलन मूल्यांकन करते हुए श्री केशरी नाथ त्रिपाठी ने कहा -

"तुलसी ने समाज को जोड़ने की कोशिश की और आज बिखरते हुए समाज को इस जोड़ने वाले तंत्र की, मंत्र की अत्यधिक आवश्यकता है. हम जाति के नाम पर बँट रहे हैं, वर्ग के नाम पर बँट रहे हैं, सम्प्रदाय के नाम पर बँट रहे हैं और शायद इसलिए तुलसी ने शंबूक-वध का जिक्र अपने 'रामचरितमानस' ग्रंथ में नहीं किया कि कहीं सामाजिक भेद-विभेद की भावना न सामने आ जाए. जीवन-मूल्य हमारे लिए सर्वोपरि हैं. किसी ऐसी बात का चित्रण न करो जिससे समाज के किसी वर्ग में मतभेद हो जाए और वह निंदा का विषय हो जाए. किसी कारण विवाद उत्पन्न न हो, इसलिए तुलसी ने 'रामचरितमानस' में सीता के निष्कासन का भी उल्लेख नहीं किया क्योंकि समाज का एक वर्ग यदि उसे

स्वीकार नहीं करता तो तुलसी के राम स्वीकार्य नहीं होते. विवादों से राम को उठाकर इस देश की संस्कृति के संरक्षक के रूप में तुलसी ने जिस राम को स्थापित किया है, आज हम सबके लिए वे पूजनीय हैं.

आज शासक का धर्म शोषणमुक्त समाज स्थापित करना कहा जा रहा है. 'रामचरितमानस' उठाकर देख लीजिए, तुलसी शोषण के विरुद्ध थे. शासन बुद्धि और विवेक से चलाया जाता है. विभाजित श्रद्धा समाज को बाँट कर रख देती है. बुद्धि, विवेक, शासन, अनुशासन, श्रद्धा, सैकड़ों बार 'रामचरितमानस' में इनके प्रसंग आए हैं. हम कहते हैं कि धर्म उस शक्ति का नाम है जो धारण कर सके तो रामायण भी उस शक्ति का नाम है जिसने हमारे और आपके समाज को एकता प्रदान की है."

श्री केशरी नाथ त्रिपाठी ने 'मानस संगम' कार्यक्रम की सराहना करते हुए इसके आयोजक पं. बद्री नारायण तिवारी को 'मानस संगम' कार्यक्रमों के लिए बहुत-बहुत साधुवाद दिया और अपनी प्रेरक कविता के माध्यम से इसे निरंतर जारी रखने के लिए प्रेरित और उत्साहित किया. कविता की पंक्तियाँ थीं-

"ऊँचे, गहरे, असीमित,
गगन, पाताल, क्षितिज
ये सब शब्द उनके लिए हैं,
जो इस धरती पर रहते हैं.
आकाश की ऊँचाई,
पाताल की गहराई,
प्रगति, उन्नति, अवनति
इन सबके मानदण्ड वही हैं
जिन्हें धरातल हम कहते हैं.
किनारों से बँधा हुआ
निकास रहित
चाहे थोड़ा हो या अधिक
पोखरे का पानी
सड़ जाता है
या सूख जाता है
फिर तलहटी की
सड़ी, फटी माटी
पूछती है कि
यथास्थिति भी कोई जीवन है
या मृत्यु का दूसरा नाम.
पर सरित प्रवाह की तरंग
नभ को छूने का सदैव करती प्रयास
भँवरों के साथ पाताल में जाकर
करती चौदह रत्नों की तलाश
और फिर ऊपर आती
किनारों को चूमती, कहती
और बढ़ जाती कि

स्थिरता ही पलायन है,
गतिशीलता जीवन."

इसलिए पं. बद्री नारायण तिवारी से मैं कह रहा हूँ कि "चरैवेति". अपने इस प्रयास को जारी रखें. ईश्वर आपको सफलता देगा. सार्थक स्वरूप सामने आयेगा. बहुत-बहुत धन्यवाद."

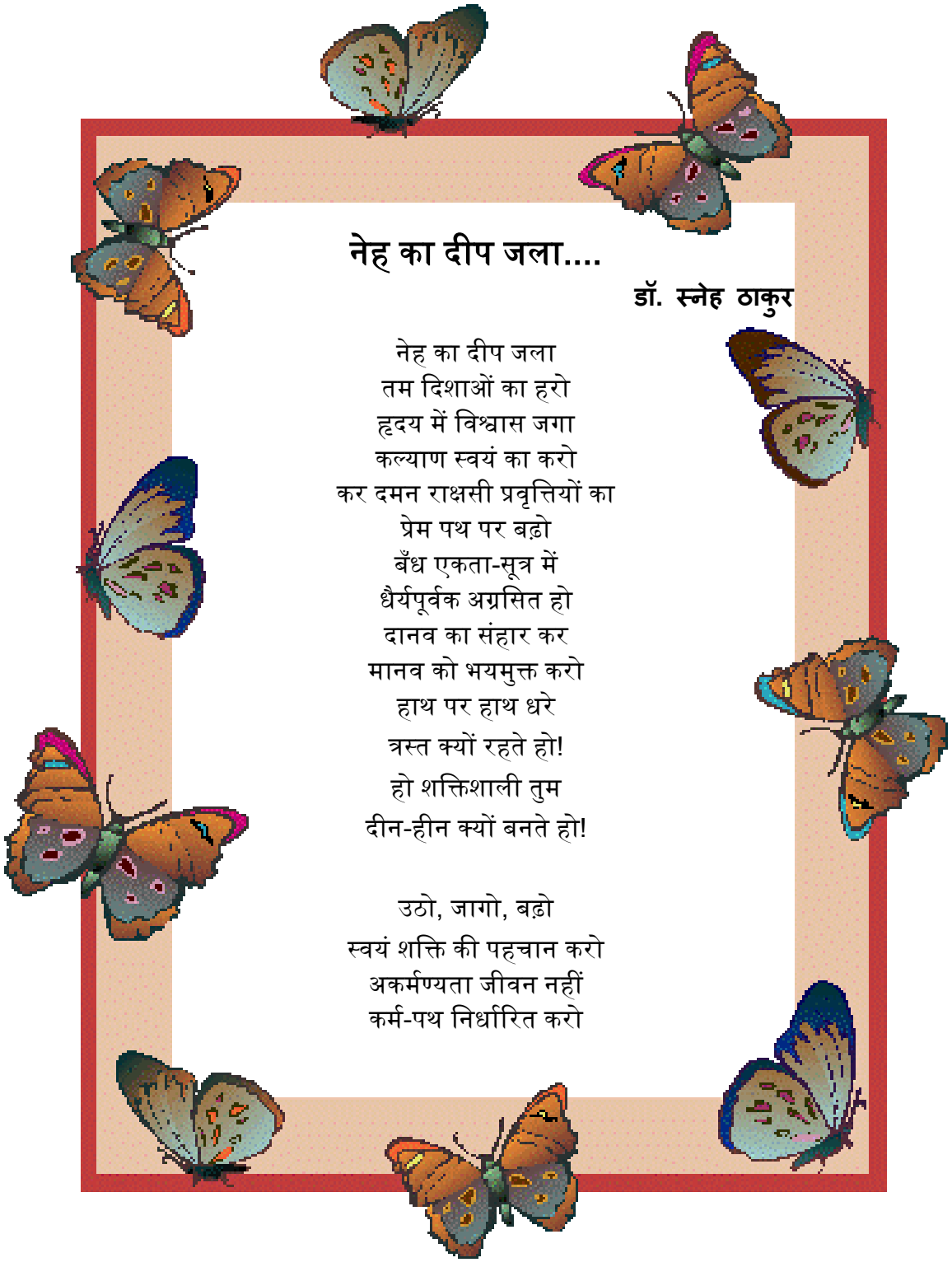

नेह का दीप जला....

डॉ. स्नेह ठाकुर

नेह का दीप जला
तम दिशाओं का हरो
हृदय में विश्वास जगा
कल्याण स्वयं का करो
कर दमन राक्षसी प्रवृत्तियों का
प्रेम पथ पर बढ़ो
बँध एकता-सूत्र में
धैर्यपूर्वक अग्रसित हो
दानव का संहार कर
मानव को भयमुक्त करो
हाथ पर हाथ धरे
त्रस्त क्यों रहते हो!
हो शक्तिशाली तुम
दीन-हीन क्यों बनते हो!

उठो, जागो, बढ़ो
स्वयं शक्ति की पहचान करो
अकर्मण्यता जीवन नहीं
कर्म-पथ निर्धारित करो

धर्म-कर्म पर डटे रहो
सफल जीवन करो.

मानव मानव का साथ दे
मानवता बनाये रहो
दीप जला अखण्ड प्रेम का
देवताओं को भी अचम्भित करो
मानवता की निडर भावना से
दानवता का सामना करो
जीत होगी तुम्हारी
मन में विश्वास धरो
संशय का बंधन काटो
एकाग्रता से जुटे रहो.

नेह का दीप जला
तम दिशाओं का हरो
हृदय में विश्वास जगा
कल्याण जगत् का करो.

जन्में थे क्यों राम?

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता

इस रामनवमी पर
मन में एक प्रश्न उभरता है
जन्में थे क्यों राम?
परमपिता मानव क्यों बनता है!

आप कहेंगे - "यह भी कोई प्रश्न है?
स्कूल में, घर पर, बड़ों से सुना होगा
क्या तुमने रामायण भी नहीं पढ़ी
रामानंदजी का सीरियल तो देखा होगा?

चलो कोई बात नहीं, आज बता देते हैं
दया करके, तुम्हारा अज्ञान मिटा देते हैं
जब रावणादि दैत्यों का बढ़ा था त्रास
सुना है जन्में थे प्रभु, करने दुष्टों का नाश!"

ऊँह, मेरी सोच कुछ और है
इन टुच्चे-मुच्चे दैत्यों को
क्षीरसागर से परमपिता
मार सकते थे एक संकेत से
इस क्षुद्र काम के लिए क्या
मानव-जन्म लेना आवश्यक था!

जन्में थे प्रभु राम
हम मानवों को शिक्षा देने
मार्गदर्शन हमारा करने
मानव-जन्म उन्हें लेने पड़े.

कैसे करें आदर बड़ों का
माता, पिता, गुरुजनों का
धर्म-पालन के लिए
त्याग करें अपने सुखों का.

कैसे करें हम प्रेम
अपने भाईयों से
पति-पत्नी में हो प्रेम कैसा
सीखें सीता-राम से.
कैसे निबाहें मित्रता
प्राण लेकर हाथ में
दुष्ट-दण्डित कैसे करें
हनुमान लेकर साथ में.
कैसे मिटायें भेद मन से
ऊँच और नीच का
केवट, शबरी से कैसे करें
प्रेम निश्छल राम-सा.
इस रामनवमी पर प्रभो
कुछ बोध मुझको दीजिये
अनुकरण कुछ कर सकूँ
प्रबुद्ध मुझको कीजिये.
मैं 'ओम' चरणों में पड़ा
कृपा-शरण दीजे विभु
राम व्याप्त सर्वत्र हों
जय-जयकार हो मेरे प्रभु.

उत्तराधिकार

पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली

(पारिवारिक परम मित्र तथा वसुधा के लेखक व शुभचिंतक प्रिय नरेन्द्र जी को पद्मश्री से सम्मानित होने की हार्दिक बधाई - संपादक)

सलूजा साहब ने नौकर को समझाया, 'देख, हम खाने पर सक्सेना साहब के घर जा रहे हैं. पीछे से पिताजी की तबीयत ज़्यादा खराब हो जाए तो हमें टेलीफ़ोन कर देना. नंबर मैंने लिखकर टेलीफ़ोन के साथ ही रख दिया है.'

वे पत्नी की ओर मुड़े, 'चलें?'

'चलो.'

'और सुन!' सलूजा साहब ने फिर नौकर से कहा, 'बाबा का ख़्याल रखना. नहीं माने तो उसे कमरे में बंद कर देना. उस पागल का कुछ पता नहीं है, पीछे से कुछ तोड़-फाड़ ही करता रहे.'

उन्होंने कार का दरवाज़ा बंद कर इंजन स्टार्ट कर दिया.

मिसेज सलूजा नाराज़गी के लहजे में बोलीं, 'तुम्हें कितनी बार समझाया है, बाबा को पागल मत कहा करो.'

'पागल नहीं है वह?'

'नहीं.' वे उसी प्रकार नाराज़ थीं, 'बेचारा बच्चा मेंटली रिटार्डेड है, तो उसका अर्थ यह तो नहीं है कि तुम अपनी घोषणाओं से दूसरों को भी उकसाओ कि लोग उसे पागल समझें.'

'सुधा!' सलूजा साहब की आवाज़ काफी साधी हुई थी, 'हम पार्टी में जा रहे हैं न! पार्टी में जाने के लिए ऐसा मूड ठीक नहीं होता. समझीं, डार्लिंग! पिताजी ने सुबह से वैसे दिमाग खराब कर रखा है और अब तुम मूड खराब कर रही हो.'

पति की धमकी से श्रीमती सलूजा के चेहरे का तनाव जैसे कुछ डर गया. सायास मुस्कराकर बोलीं, 'अब मूड खराब नहीं करूँगी.'

उन्होंने रास्ते भर अपना वचन निभाया. न अपना मूड खराब किया न सलूजा साहब का मूड खराब होने दिया.

सक्सेना बाहर गेट पर ही उनकी प्रतीक्षा कर रहा था.

'बड़ी देर कर दी!' उसने हाथ मिलाते हुए शिकायत की.

'यार, क्या बताएँ! पिताजी की तबीयत कुछ ठीक नहीं चल रही. उसी में देर हो गई.'

'सीरियस है क्या?'

'सीरियस ही समझो.' सलूजा साहब बोले, 'बस आज-कल की बात है. आखिर तो कभी सीरियस होना ही है.'

'हाऊ सैड!' सक्सेना उदास हो गया.

'अच्छा, सैड तो सैड सही.' सलूजा साहब ने उसकी पीठ थपथपाई, 'अब बता खाना तैयार है? क्या-क्या बनवाया है? बड़ी भूख लग रही है.'

मेज़ लगी हुई थी. सक्सेना उन्हें सीधे मेज़ पर ही ले गया.

'चाचाजी की तबीयत ठीक नहीं है, इसी से देर हो गई.' सक्सेना ने अपनी पत्नी को चेता दिया, कहीं वह कोई ऐसी बात न कर बैठे, जो वातावरण के उपयुक्त न हो.

मिसेज सक्सेना सँभल गईं, नहीं तो सचमुच ही उन्हें अपनी जीभ पर कोई नियंत्रण नहीं है.

'बाबा का क्या हाल है? ठीक है?'

मिसेज सक्सेना दो-तीन प्लेटें आगे बढ़ाकर स्वयं को काफी संतुलित कर चुकी थीं.

'ठीक क्या है.' सलूजा साहब बोले, 'पागल भी कभी ठीक हुआ है. सुबह ही उसने केतली उठाकर पटक दी. सारा सेट खराब कर दिया. मैं पिछले वर्ष जर्मनी से लाया था.'

श्रीमती सलूजा उन्हें घूरती रहीं और फिर बड़े प्रयत्न से अपनी आवाज़ को ऊपर उठने से रोकती हुई बोलीं, 'फिर वही बात!'

'ओ-हो, तो पागल को पागल नहीं कहूँ?'

'देखा, बहनजी, आपने!' श्रीमती सलूजा एकदम से रुआँसी हो गईं, 'कोई अपने बीमार बच्चे को भी इस तरह से कहता है?'

'यार सलूजा! तुम बक-बक बहुत करते हो.' सक्सेना ने प्यार से डाँटा, 'पागल कहने का क्या मतलब है तेरा. इलाज़ हो रहा है, ठीक हो जाएगा.'

'अच्छा हो जाएगा तो नहीं कहूँगा.' सलूजा साहब बोले.

पहले से अब वह काफी ठीक है.' श्रीमती सलूजा बोलीं, 'अब चीज़ें कम तोड़ता है. चीखता-चिल्लाता भी ज़्यादा नहीं है. घर पर कोई आया हुआ हो तो एकदम चुपचाप बैठा रहता है. उसके बिहेवियर को देखकर तो कोई कह भी नहीं सकता कि वह पूरी तरह से अलर्ट नहीं है. हाँ, कभी-कभी कोई बात ऐसी कर बैठता है....'

श्रीमती सलूजा शेष लोगों को समझा रही थीं, पर उनका मन अपनी बात से सहमत नहीं हो पा रहा था. वे अच्छी तरह जानती हैं कि बाबा साधारण बच्चों के समान सहज नहीं है. पर वह ऐसा भी नहीं है कि उसे पागल कहा जाए - जैसा कि सलूजा साहब कहते रहते हैं.

श्रीमती सलूजा का मन उखड़ गया था और सलूजा साहब थे कि जम गए थे. श्रीमती सलूजा एक मिनट भी वहाँ रुकना नहीं चाहती थीं और सलूजा साहब थे कि उठना नहीं चाहते थे. वे ताश खेलने बैठ गए थे और इसका मतलब था कि वे बारह बजे से पहले उठने वाले नहीं थे. सलूजा साहब और सक्सेना साहब जब बैठ जाते थे, तो बारह से पहले वे कभी नहीं उठते थे.

श्रीमती सलूजा ने इतने समय में श्रीमती सक्सेना को पिताजी की तबीयत के विषय में भी सब कुछ बता दिया था. पिताजी बहुत बूढ़े हो गए हैं, कुछ काम करते-धरते नहीं बनता. उन्हें हर समय किसी न किसी आदमी की आवश्यकता पड़ती ही रहती है. दिन-भर चिल्लाते ही रहते हैं. सलूजा साहब तो कह रहे थे कि उन्हें कोठी से परे, गैरेज के पास वाले कसी सर्वेंट क्वार्टर में भेज दिया जाए, पर मैंने ही मना कर दिया था. लोग क्या कहेंगे, बूढ़े बाप को उठाकर गैरेज में पटक दिया, जैसे आदमी न हो पुराना कबाड़ हो. बड़ी मुश्किल से मनाया था सलूजा साहब को. अब पिताजी की हालत एकदम खराब हो गई है. बीमारी से एकदम निढाल हो गए हैं आवाज़ तक नहीं निकलती. किसी को पुकारना चाहें तो पुकार भी नहीं सकते. वे तो आज घर से बाहर ही निकलना नहीं चाहती थीं. पिताजी को पीछे से कुछ

हो गया तो लोग यही कहेंगे कि बहू-बेटा सैर-सपाटा कर रहे थे, पीछे से बुड्ढा तड़पता-तड़पता मर गया. बेटे को तो कोई कुछ नहीं कहेगा - बेटा तो अपना खून होता है. लोग बदनाम तो बहू को ही करेंगे न.

'चलो भी, डार्लिंग!' उन्होंने सलूजा साहब को पुकारा, 'पता नहीं पीछे पिताजी की क्या हालत होगी!'

'ओ-हो! मुझे मालूम है, हालत खराब होगी.' सलूजा साहब बोले, इसीलिए मैं घर नहीं जाना चाहता!'

श्रीमती सलूजा का मूड और भी खराब हो गया. ये हमेशा इसी प्रकार करते हैं. बाहर जाकर, बाहर के लोगों के सामने एकदम ही डिक्टेटर हो जाते हैं, जहाँ इनसे कोई कुछ कह ही न सके.

पर उनके बिगड़े मूड का सलूजा साहब पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा.

साढ़े बारह के लगभग सलूजा साहब अपनी मर्जी से उठे, 'अब चलें, यार सक्सेना, कुछ नींद आ रही है. आज थकावट कुछ ज़्यादा हो गई है. चलो, सुधा!'

श्रीमती सलूजा तैयार ही बैठी थीं, उन्होंने उठने में एक मिनट भी नहीं लगाया. सक्सेना साहब और श्रीमती सक्सेना उन्हें कार तक छोड़ने आए.

चलते-चलते सलूजा साहब सक्सेना से बोले, 'कल शायद तुम्हें हमारी तरफ आना पड़े.'

'कोई खास बात?'

'अभी तो नहीं, पर हो सकता है, पिताजी चल बसें. ओ.के., सो लौंग.'

कार चली गई और सक्सेना असमंजस भरी आँखों से उसकी बैक लाइट को देखता रहा.

कार को गैरेज में खड़ा कर, सलूजा साहब ने अपने सामने नौकर से गैरेज में ताला लगवाया. अपने कमरे में आकर मजे-मजे कपड़े बदले और बोले, 'मैं जरा पिताजी को देख आऊँ.'

कमरे में घुसते ही उन्होंने देखा कि पिताजी घिसट-घिसटकर पलंग के एकदम किनारे आ चुके थे और धीरे-धीरे हाथ बढ़ाकर पास पड़े मेज पर से शायद पानी का गिलास उठाना चाह रहे थे. पर हाथ था कि वहाँ तक पहुँच नहीं रहा था और पिताजी में शायद उठने की शक्ति नहीं थी.

'पानी चाहिए, पिताजी?' सलूजा साहब ने पिताजी के सामने जाकर पूछा.

पिताजी की आँखें उनकी ओर उठीं, होंठ कुछ कहने के लिए हिले, पर आवाज़ कोई नहीं आई. उनका हाथ अपनी हलक पर आ गया था.

शायद आवाज़ ख़त्म हो गई है - सलूजा साहब ने सोचा - हलक पर हाथ रख रहे हैं, प्यास ही लगी होगी.

सलूजा साहब ने बाएँ हाथ से ग्लास उठाया और दाहिने हाथ से सहारा देकर पिताजी को कुछ उठाकर उनके मुँह से गिलास लगा दिया.

पिताजी ने सारा ग्लास खाली कर दिया. कुछ पानी मुँह के कोरों से बहकर उनकी गर्दन तक आ गया था और उनकी जीभ उसे भी चाट लेने का प्रयत्न कर रही थी.

सलूजा साहब ने उन्हें लिटा दिया और अटैच्ड बाथरूम से पानी का ग्लास भरकर फिर वहीं मेज पर रख दिया.

'तबीयत कैसी है?' उन्होंने पूछा.

पिताजी के होंठ फिर हिले और उनका हाथ अपने हलक पर चला गया.

पूछना बेकार है - सलूजा साहब ने सोचा.

'अच्छा सो जाइए.' सलूजा साहब दरवाजा भिड़ाकर बाहर आ गए.

नौकर शायद सोने के लिए अपने क्वार्टर की ओर जा रहा था.

'ऐ! बाबा कहाँ है?'

'जी, बाबा सो गए हैं.'

'हमारे जाने के बाद उसने कोई तोड़-भोड़ तो नहीं की?'

'जी नहीं. मुझसे बातें करते रहे.'

'अच्छा, जाओ.'

सलूजा साहब बेडरूम में आए.

'कैसे हैं?' श्रीमती सलूजा ने पूछा.

'अभी हैं.' सलूजा साहब ने बताया, 'आवाज़ बंद हो गई है, शायद कल ख़त्म हो जाएँ.'

सुबह आठ बजे के लगभग सलूजा साहब की आँख खुली. श्रीमती सलूजा उनसे पहले उठ चुकी थीं.

'नौकर को कहो, चाय दे जाए.' 'फिर जाकर पिताजी का हाल पूछता हूँ.'

'अच्छा.'

चाय पीकर सलूजा साहब ने अपनी तंद्रा को भगाया. आँखे मलीं. बाहों को दो-चार बार तोड़ा-मरोड़ा. सिर को झटका और उठ बैठे. गाउन पहना और पिताजी के कमरे की ओर चले.

दरवाजा खोला तो एकदम रात वाला दृश्य था. पिताजी पलंग के एकदम किनारे पर पड़े हुए, अपना हाथ पूरी तरह सीधा कर, मेज पर से शायद पानी का गिलास उठाने का प्रयत्न कर रहे थे.

दरवाजा खुलने की आवाज़ का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था.

शायद कान भी गए, सलूजा साहब ने सोचा. वे आकर सामने की ओर खड़े हुए. पर पिताजी वैसे के वैसे ही पड़े रहे. सलूजा साहब ने और पास आकर देखा. पिताजी मर चुके थे. उनका हाथ गिलास तक नहीं पहुँचा था, और प्यास उनके सूखे होठों पर मौत के साथ जम गई थी.

सलूजा साहब ने हाथ में उठाया ग्लास वापस मेज पर रख दिया. और पिताजी के शरीर को सीधा कर, पलंग के बीच में कर दिया.

अपने कमरे में लौटकर उन्होंने श्रीमती सलूजा को बताया, 'पिताजी ख़त्म हो गए हैं.'

'जी!'

'हाँ!' वे बोले, 'जरा डॉक्टर को फ़ोन करो.'

'जी. अब डॉक्टर का क्या करना है?' वे बोलीं.

'डेथ सर्टिफिकेट लेना है या नहीं!'

डॉक्टर के आने और जाने में विशेष देर नहीं लगी. क्षण-भर के परीक्षण के बाद ही उसने पिताजी को मृत घोषित कर दिया और अपना बैग उठाकर लौट गया.

'सुधा!' सलूजा बोले, 'ब्रेकफास्ट लगवा दो और मेरे दफ़्तर फ़ोन कर दो कि मैं नहीं आ रहा हूँ. ब्रेकफास्ट के बाद हर्स के लिए टेलीफोन कर देना और जिस-जिस को खबर देनी हो, दे देना. सक्सेना को मैं ख़ुद फ़ोन कर दूँगा कि वह छुट्टी ले ले और अपनी कार लेकर आ जाए. हो सकता है और रिश्तेदारों को श्मशान ले जाना पड़े.'

हर्स जिस समय मृत शरीर को लेने के लिए आई, तब तक अधिक लोग नही आए थे. आठ-दस लोग ही थे. सलूजा साहब और लोगों की प्रतीक्षा करने के पक्ष में नहीं थे, लोगों का क्या करना था! जो होना था वह हो गया और जो काम बाकी है, उसे जल्दी से ख़त्म कर देना चाहिए. वैसे भी हर्स के ड्राइवर को रोके रखना आसान काम नहीं था.

हर्स में मृत शरीर को रखा गया और शेष लोग सलूजा साहब और सक्सेना साहब की कारों में श्मशान-घाट पहुँचे.

सलूजा साहब ने पंडितजी की बताई हुई प्रत्येक क्रिया को पूरे धार्मिक अनुष्ठान के साथ किया और जब सारा काम करके वे वापस लौटे तो चार बज चुके थे. अधिकांश लोग श्रीमती सलूजा से अफ़सोस करके लौट चुके थे; और शेष लोग सलूजा साहब से अफ़सोस कर तुरंत चले गए. अधिकांश लोग दफ़्तरों में से अफ़सोस करने के लिए आए थे और उनका दफ़्तर बंद होने से पहले वापस पहुँचना जरूरी था, नहीं तो शायद आधे दिन की छुट्टी लेनी पड़ जाती. उनकी पत्नियाँ भी पीछे नहीं ठहर सकती थीं, पति के जाने के बाद उन्हें सवारी के लिए परेशान होना पड़ता. ऐसे तो उनके पति उन्हें घर छोड़ते हुए दफ़्तर चले जाते. या साथ ही दफ़्तर ले जाते, आधे घंटे बाद दफ़्तर से भी तो घर ही लौटना था.

साढ़े चार बजे तक वे लोग, अफ़सोस करने आने वाले लोगों से निबट चुके थे.

'सुधा! नौकर को चाय के लिए कह दो.' सलूजा साहब बोले, 'मैं नहाकर अभी आ रहा हूँ.'

चाय की मेज पर बाबा सलूजा साहब से पहले आकर बैठा हुआ था.

'इसे इसके कमरे में चाय क्यों नहीं पिला दी!' सलूजा साहब बोले, 'यहाँ फिर कुछ तोड़ देगा.'

'नहीं तोड़ता.' श्रीमती सलूजा कुछ खिन्न स्वर में बोलीं, 'बाबा, नहीं तोड़ोगे न?'

'नहीं.' बाबा ने सिर हिला दिया.

पर सलूजा साहब की तीखी नज़र बाबा को घूरती रही. वह कप उठाने के लिए हाथ बढ़ाता तो उसकी उँगलियाँ हैंडल पकड़ने के स्थान पर कप से टकरा जातीं और कप डगमगा जाता. वह कप को मुँह की ओर लाता तो रास्ते में तीन बार उसका हाथ बहकता और कप गिरने-गिरने को हो जाता.

बाबा दस वर्ष का हो गया था और पिछले आठ वर्षों से विभिन्न स्थानो से वे उसका इलाज़ करवा रहे थे. पर बाबा आज भी बौंगा का बौंगा ही था. न उसके हाथ-पैर ठीक से चलते थे, न उसकी हकलाहट दूर हुई थी और न उसका दिमाग ही सही काम करता था.

उन्होंने बाबा पर से अपनी दृष्टि हटा ली.

'पिताजी वाले कमरे का अब क्या करना है?' उन्होंने श्रीमती सलूजा से पूछा, 'वह बंद पड़ा रहे, यह मैं नहीं चाहूँगा.'

'नहीं, बंद क्यों पड़ा रहेगा.' वे बोलीं, 'उसे साफ़ करवा कर गेस्ट-रूम बनबा देती हूँ. जब कभी कोई भाई-बहन रहने के लिए आ जाता है - आराम से रहेगा.'

'पापा!' बाबा पहली बार बोला, 'उसे नौकर को दे दीजिए. जब मैं उसे बुलाता हूँ तो उसे बहुत दूर से आना पड़ता है.'

श्रीमती सलूजा हँस पड़ीं, 'व्हाट एन आइडिया.'

पर सलूजा साहब नहीं हँसे, 'मैं जब कहता हूँ तो तुम्हें बुरा लगता है. अब बताओ, यह पागल नहीं है.'

'ऐसी बात तो कोई भी बच्चा कर सकता है.' वे बोलीं, 'और वह तो फिर बीमार है. आप उसका आत्मविश्वास जगाने के लिए कभी कोई अच्छी बात नहीं कह सकते?'

'तुम क्या कम कह लेती हो.' वे बोले, 'आज किसी समय या कल पिताजी के कमरे की चीजें हटवा देना. अभी तो उन्हें गैरेज में ही एक ओर डाल दो. बाकी फिर देखेंगे.'

वे घड़ी देखते हुए उठ गए थे. श्रीमती सलूजा समझ गईं कि टेलीविज़न का समय हो गया है. उन्होंने मुड़कर देखा, सलूजा साहब ने ट्रांसफार्मर चला दिया था और अब टेलीविज़न चलाने के लिए उसकी ओर बढ़ रहे थे.

श्रीमती सलूजा ने बाबा का कप पकड़कर चाय पीने में उसकी सहायता की और पूछा, 'और कुछ लोगे?'

'बस.' बाबा ने कमीज की आस्तीन में मुँह पोंछ डाला.

'बाबा!' श्रीमती सलूजा ने प्यार भरे स्वर में शिकायत की, 'तुम्हें कितनी बार समझाया है कि मुँह रुमाल या नैपकिन से पोंछा करो.'

बाब हँसा. कुछ बोला नहीं.

टेलीविज़न चल पड़ा था और स्क्रीन पर एक सुंदर-सी एनाउंसर कोई विशेष सूचना दे रही थी.

'टेलीविज़न.' बाबा उत्सुकता में कुर्सी से उचका और लड़खड़ा गया.

'सँभलकर. सँभलकर.' श्रीमती सलूजा ने उसे पकड़ लिया.

वे दोनों साथ-साथ डाइनिंग टेबल छोड़कर ड्राइंग-रूम के सोफे की ओर बढ़े.

'अब हम टेलीविज़न अपने बेड-रूम में भी ले जा सकते हैं.' सलूजा साहब बोले.

पिताजी और तो कुछ कर नहीं सकते थे, इसलिए टेलीविज़न का पूरा कार्यक्रम देखा करते थे. उनकी ही सुविधा के लिए टेलीविज़न ड्राइंग-रूम में रखा गया था. वे अब नहीं थे पर श्रीमती सलूजा शुरू से टेलीविज़न को अपने बेडरूम में रखने के विरुद्ध थीं - कभी कोई बाहर का आदमी भी आ जाता है. वे नहीं चाहती थीं कि टेलीविज़न देखने के लिए कोई आदमी उनके बेडरूम में आए.

'अच्छा, देखेंगे.' वे धीरे-से बोलीं.

'देखेंगे क्या!' सलूजा साहब बोले. 'अब किसके लिए टेलीविज़न यहाँ रहेगा. पिताजी तो हैं नहीं. आराम से बिस्तरों में लेटकर देखेंगे, यहाँ तीन-चार घंटे अकड़कर बैठने का क्या मतलब!'

बाबा ने ज़ोर-ज़ोर से दो तालियाँ बजाईं. वह अपनी प्रसन्नता तालियाँ बजाकर ही प्रकट करता था. वह कब किस बात से ख़ुश हो उठेगा और ताली बजा देगा, कोई नहीं जानता था.

सलूजा साहब ने नाराजगी से उसकी ओर देखा, 'क्या है?'

'जब पापा मर जाएँगे तो मैं टेलीविजन अपने कमरे में ले जाऊँगा.' बाबा ने फिर ताली बजाई.

सलूजा साहब के चेहरे पर नाराज़गी उभर आई, 'पागल कहीं का!'

'बाबा!' श्रीमती सलूजा बोलीं, 'बड़ों के लिए ऐसी बात नहीं कहते. अपने मम्मी-पापा से प्यार करते हैं. उनके बारे में कोई बुरी बात नहीं सोचते.'

'तुम्हारी ऐसी बातों से पापा को बहुत दु:ख होता है. ऐसी बात कभी मत सोचना.'

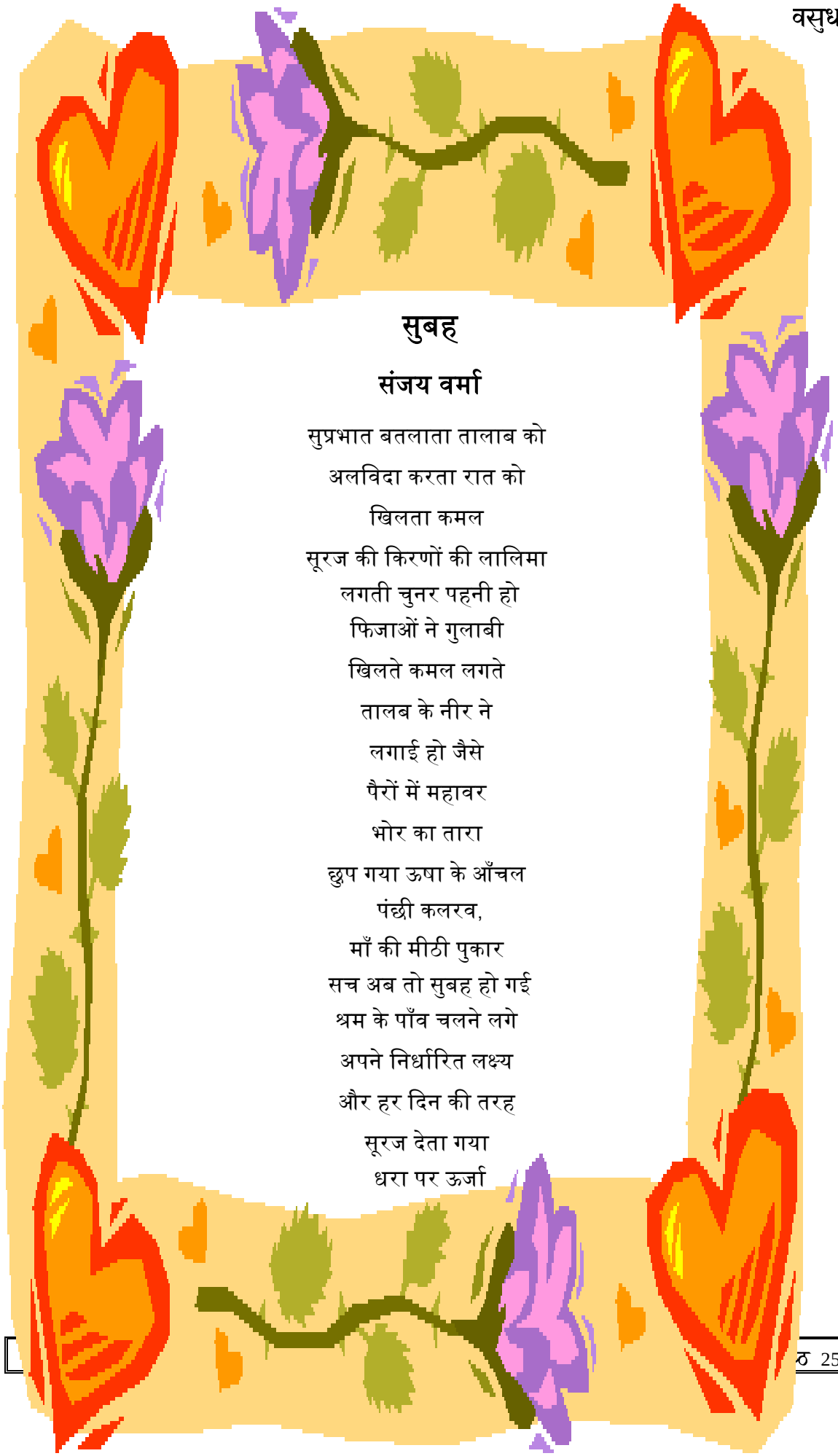

सुबह

संजय वर्मा

सुप्रभात बतलाता तालाब को
अलविदा करता रात को
खिलता कमल
सूरज की किरणों की लालिमा
लगती चुनर पहनी हो
फिजाओं ने गुलाबी
खिलते कमल लगते
तालब के नीर ने
लगाई हो जैसे
पैरों में महावर
भोर का तारा
छुप गया ऊषा के आँचल
पंछी कलरव,
माँ की मीठी पुकार
सच अब तो सुबह हो गई
श्रम के पाँव चलने लगे
अपने निर्धारित लक्ष्य
और हर दिन की तरह
सूरज देता गया
धरा पर ऊर्जा

उनका मिलना

रमेश जोशी

सुना है, वे मिलने वाले हैं, यह नियति है तो आज नहीं तो कल, उन्हें मिलना ही है. कहीं ऐसा तो नहीं है कि कोई उन्हें ज़बरदस्ती मिला रहा है? पर मिलने की ब्रेकिंग न्यूज है. वातावरण में बड़ा रोमांच, सस्पेंस और तनाव है. मिल पाएँगे कि नहीं? मिलेंगे तो कब, कहाँ और कैसे? कितनी देर तक मिलेंगे? किस समय और किस मौसम में मिलेंगे? मौसम बेईमान होगा या ईमानदार? मिलेंगे तब पहले कौन मुस्कराएगा? पहले कौन हाथ बढ़ाएगा? हाथ मिलाएँगे या गले मिलेंगे? खाली हाथ मिलेंगे या कोई गुलदस्ता होगा या कोई पात्र? कहीं किसी के हाथ में कोई बघनखा तो नहीं होगा? जैसे अफ़ज़ल खान से मिलते समय शिवाजी के हाथ में था. राम और सुग्रीव की तरह किसी हनुमान की उपस्थिति में अग्नि की साक्षी में मिलेंगे? या राम और विभीषण की तरह मिलेंगे और मिलते ही राम की तरह विभीषण को लंका का राजा घोषित कर देगे? कृष्ण और सुदामा की तरह मिलेंगे या धृतराष्ट्र और भीम के लौह-पुतले की तरह मिलेंगे? पाठक भीम के प्रति धृतराष्ट्र के वात्सल्य भाव के बारे अच्छी तरह जानते हैं. सिकंदर और पोरस की तरह मिलेंगे या समधियों की तरह या मनमोहन और मुशर्रफ की तरह मिलेंगे या फिर चोर और सिपाही की तरह? मोहम्मद गौरी और जयचंद की तरह वतन का सौदा करने के लिए मिलेंगे या फिर राणा प्रताप और भामाशाह की तरफ मेवाड़ की स्वतंत्रता का जतन करने के लिए मिलेंगे?

वैसे जिनको मिलना होता है वे कब और कैसे मिल लेते हैं? जब भंडा फूटता है तो पता चलता है कि अमुक-अमुक मिले थे. बुज़ुर्ग लोग आश्चर्य करते हैं कि किसी को पता तक नहीं चला. पता नहीं कब और कैसे मिल लिए? वैसे कुछ बस स्टाप पर लाइन में खड़े-खड़े ही मिल लेते हैं. कुछ वेलेंटाइन डे पर अखबारों में छद्म नामों से सन्देश छपवाकर मिल लेते हैं. कुछ हीरो या हीरोइन की बहन या सखी के घर मिल लेते हैं. कुछ भरी दुपहरी, बीच सड़क पर मोटर साइकल रोककर मिल लेते हैं भले ही दूसरे वाहन चालक कुढ़ते रहें. कुछ रैदास के चन्दन और पानी की तरह मिलते हैं, कुछ तेल और पानी की तरह मिलते हैं तो कुछ दूध और काचर के बीज की तरह मिलते हैं. कुछ के मिलने पर केवल भौतिक परिवर्तन होते हैं जब कि कुछ के मिलने पर रासायनिक परिवर्तन होते हैं और कभी-कभी कुछ के मिलने पर जैविक परिवर्तन भी हो जाते हैं. कुछ टूट कर मिलते हैं तो कुछ छूटकर, और कुछ रूठकर मिलते हैं. कुछ लुट कर तो कुछ लूटकर मिलते हैं. कुछ साइकल, कुछ प्लेन, कुछ हेलीकोप्टर से जाकर मिलते हैं तो कुछ सुदामा की तरह पैदल ही द्वारका के लिए 'माँगत खात चले तहाँ मारग बाली-बूँट' चल पड़ते हैं. कुछ सोहनी और महिवाल की तरह कच्चे घड़े के सहारे ही नदी पार करते मिलने के लिए चल पड़ते हैं. कुछ का मिलना लोगों को सुखद लगता है तो किसी के मिलने में जातीय पंचायत ही बीच में लट्ठ अड़ा देती है और कभी-कभी तो सज़ा भी सुना देती है. कुछ का मिलना शाश्वत हो जाता है तो कुछ चौबीस घंटे भी नहीं निकालते.

कुछ चाहकर भी नहीं मिल पाते तो कुछ को ज़बरदस्ती मिला दिया जाता है और वे जीवन भर रस्सी तुड़ाने के लिए मौका देखते रहते हैं. कुछ को मिलने के लिए खुला छोड़ दिया जाता है तो कुछ के मुँह पर सिद्धांतों की छींकी बाँध दी जाती है. कुछ जन्म-पत्री के आधार पर मिलते हैं तो कुछ संयोगवश. कुछ बिछुड़ कर कभी नहीं मिलते तो कुछ 'पाकीज़ा' की तरह बार-बार बिछड़-बिछड़कर मिलते रहते हैं.

कुछ के मिलन में मंगल अमंगलकारी हो जाता है तो नंगे पाँव तीर्थ-यात्रा करनी पड़ती है. कुछ मध्यस्थ के थ्रू मिलते हैं तो कुछ स्वयं ही अपनी व्यवस्था कर लेते हैं. कुछ की जोडियाँ ऊपर से तय होती हैं तो कुछ की नाई-ब्राह्मण मिलाते हैं. कुछ का मिलना बेमेल मन जाता है तो कुछ का मिलना इसलिए अच्छा मन जाता है कि चलो दो घर बिगड़ते एक घर ही बिगड़ा.

हम तो इतना ही जानते हैं कि जिनमें मिलने की चाहत, लगन, ज़ज्बा, शिद्दत होते हैं वे कभी भी और कहीं भी मिल कर ही रहते हैं. ऐसे लोग समय व्यर्थ नहीं करते. हीरो मोबाइल पर मेसेज कर देता है कि डोली सजाकर रखना, मेंहँदी लगाकर रखना, मैं मोटर साइकल स्टार्ट करके रखूँगा और बैठते ही छू. कृष्ण-रुक्मिणी का, अर्जुन-सुभद्रा का और पृथ्वीराज संयोगिता का अपहरण करके मिलते हैं. मिलने वाले ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाने में समय व्यर्थ नहीं करते. और न ही वास्तुशास्त्री से पूछते हैं कि उत्तर-पूर्व में मिलें या दक्षिण-पश्चिम में या कि फिर पिछवाड़े में. कुछ में मिलने की इतनी लगन होती है कि इस जन्म में मिलने की संभावना ख़त्म होते ही 'उस दुनिया' में मिलने के लिए चूहे मारने वाली दवा पी लेते हैं. तभी कहा है - नींद न देखे टूटी खाट, प्यास न देखे धोबी घाट. सच्चा पीनेवाला ८ पी.एम. का समय होते ही व्हिस्की या शैम्पेन का इंतज़ार नहीं करता. कुछ नहीं तो स्पिरिट ही पी जाता है फिर भले ही आँखें चली जाएँ या जान. मिलने की मन में हो तो फिर किसी स्थान विशेष के लिए आग्रह नहीं होता. मिलना है तो मिलना है फिर क्या झूमरी तलैया और क्या झोटवाड़ा.

अर्ज़ किया है - तेरा मिलना खुशी की बात सही, तुझसे मिलकर उदास रहता हूँ.

ग़ज़ल

दिनेश कुमार 'डीजे'

मेरी बेपनाह खुशियों की यूँ हिफ़ाज़त हो गई,
चाहने वाले हुए तो तन्हाई की आदत हो गई।

सोचा था कभी मेरा कोई मुंतज़िर महबूब हो,
दुनिया को समझा तो ख़ुदा की चाहत हो गई।

चर्च, मंदिर, मस्ज़िद को जकड़े रही सियासत,
फकीर ने सर झुकाया और इबादत हो गई।

रिश्तों में सियासत की जब से हुई मिलावट,
सियासत और मोहब्बत दोनों बेइज्ज़त हो गई।

यूँ इश्क करने वालों को हम भला क्या कहें?
मेरा वक्त सुधरा और उनको मोहब्बत हो गई।

देश हमारा है, तो हम किसके हैं ?

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

कुलपति, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

आज से डेढ़ सदी पहले स्वामी विवेकानंद ने देश के युवकों का आवाहन किया था और देश की ध्वजा विश्व में लहराई थी। कुल उन्तालीस वर्ष की आयु पाने वाले इस संन्यासी ने कर्म का अद्‌भुत पाठ पढाया था। अध्यात्म के उपदेष्टा गुरु रामकृष्ण परमहंस के योग्य शिष्य इस योगी ने अध्यात्म और लोक सेवा की निकटता का अविष्कार किया तथा आलस्य छोड़ कर समाज के साथ जुड़ कर कार्य करने का एक देशी मॉडल प्रस्तुत किया था। सार्वदेशिकता और मानवता का स्वर गुँजाते हुए स्वामी विवेकानंद ने युवा वर्ग में धर्म और राष्ट्र गौरव का भाव भरने की चेष्टा की थी। आज फिर हम देश के साथ युवा वर्ग को जोड़ना चाह रहे हैं। यह एक महत्वाकांक्षी विचार है जो आज समस्या के रूप में हमारे सामने उपस्थित है, लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिए था। कारण कि यह प्रश्न वैसे ही है जैसे किसी जीवित व्यक्ति से पूछा जाय कि क्या आप साँस लेना चाहते हैं? क्या आप पानी पीना चाहते हैं? क्या आप भोजन करना चाहते हैं? देश के साथ युवा वर्ग का जुड़ाव हमारे सामाजिक जीवन का एक स्वाभाविक हिस्सा होना चाहिए। आज यह प्रश्न इसलिए उठ रहा है क्योंकि समाज, देश या राष्ट्र जैसे व्यापक विचार खिसक कर पृष्ठभूमि में चले गए हैं। हम यह भूलने लगे हैं कि यदि देश हमारे दृष्टिपथ में नहीं रहता है तो जो निर्णय हम देश को भुलाकर सिर्फ स्वयं को ध्यान में रखकर लेते हैं, उससे अपने सुख की अभिवृद्धि होती है, पर वह समाज के लिए घातक हो जाता है। देश और समाज के प्रति उदासीनता, उसके साथ संलग्नता का अभाव, उसके साथ तादात्मीकरण न होना आम बात हो रही है। देश में तमाम घटनाएँ होती हैं और हम उनसे अप्रभावित बने रहते हैं। 'देश हमारा है' और 'समाज हमारा है और हम समाज के है', ये सब भाव कमजोर पड़ते गये हैं।

हम भूल जाते हैं कि हम सभी एक समाज, एक संस्कृति, एक समुदाय और एक देश में जीवन आरम्भ करते हैं। ये संस्थाएँ हमारी रक्षा और विकास के उपाय करती हैं। माता, पिता, गुरु यहाँ तक कि पशु-पक्षी, वृक्ष सबका हमारे जीवन को संभव बनाने और समृद्ध करने में बड़ा योगदान है। इस प्रसंग में 'ऋण' के विचार का बड़ा महत्त्व था। माता-पिता का ऋण, गुरु का ऋण, प्राणियों का ऋण जीवन भर महत्त्वपूर्ण बने रहते हैं। अर्थात् हमको अपना ही ध्यान नहीं रखना है, दूसरों का भी ध्यान रखना है और उनकी रक्षा करनी है। हमारा, आपका, सबका होना तब सचमुच में होना होता है जब वह दूसरों के लिए होता है।

इस तरह का जीवन अनुशासन की माँग करता है। हम लोग अपने को स्वतन्त्र मानते हुए प्रायः अनुशासनमुक्त होने की दिशा में अग्रसर होते हैं और 'स्वतंत्र' शब्द का बड़ा दुरुपयोग करते हैं। स्वतंत्र का मतलब यह नहीं है कि मनमाना करें। स्वतंत्र का मतलब है अपना तंत्र, किसी दूसरे का तंत्र नहीं। अर्थात् आप अपने नियम से अपने को बाँधेंगे। यह नियमविहीनता की स्थिति नहीं बल्कि स्वायत्तता की स्थिति है। अपने ऊपर कुछ बंधन रखेंगे तभी अधिक ऊर्जा ले आ पाएँगे। जब तक अपने ऊपर अनुशासन नहीं होगा तब तक कुछ नहीं हो सकता। पिछली शताब्दी के दो सबसे बड़े अनुशासित लोग थे महात्मा गाँधी और संत विनोबा। उनका अपने ऊपर जबर्दस्त अनुशासन था और यह जग जाहिर है

कि वे विलक्षण रूप से कितना काम कर गए। बिना अनुशासन के, कोई क्षमता नहीं आ सकती और कोई भी कार्य संभव नहीं होता।

अनुशासन के ही साथ यह भी जरूरी है कि हमारी संगति ठीक रहे। जीवन में अनुशासन हो और यदि सत्संगति साथ हो तब तो सोने पर सुहागा। आपके जीवन की गुणवत्ता बढ़ जाएगी। अपने सामजिक परिवेश में जो अच्छे विचार और सात्विक भाव हैं उनकी निकटता अगर मिलती है तो आप में निश्चय ही सकारात्मक बदलाव आयेंगे। सत्संगति हो तो चाह कर भी आप गड़बड़ नहीं कर पाएँगे। वह आपको अच्छे मार्ग पर ही ले जाएगी। आप भले मार्ग पर ही आगे बढ़ेंगे ।

तीसरी बात जो मूल्य के रूप में बड़ी प्रासंगिक है वह है मनुष्य की सोच या अवधारणा। वैसे तो आज किसी को फुर्सत ही नहीं मिलती कि यह विचार करें कि आप कौन हैं। अगर किसी से पूछा जाए कि आप कौन हैं तो कई उत्तर मिलते हैं : 'सोचने की क्षमता', 'विवेक' आदि। पर मनुष्य एक ही साथ 'सबजेक्ट' भी है और 'ऑब्जेक्ट' भी। अपने आपको ऑब्जेक्ट बनाना यह क्षमता मनुष्य में है। यह एक बहुत बड़ी क्षमता है। आप अपने आपको सम्बोधित कर सकते हैं। हम दूसरों को देखते हैं और अपने आप को भी। आप कभी-कभी खुद से कहते हैं न कि "यार तुमने अच्छा काम नहीं किया", "आज दिन भर तुमने बर्बाद कर दिया।" आप अपने से बात करते हैं। आप अपने को ठीक करते हैं। आप अपने को बदलते हैं। यह जो अँग्रेजी में एक शब्द है 'सेल्फ' या स्व का विचार यह आपके लिए एक वस्तु (ऑब्जेक्ट) है सेल्फ को वस्तु मान कर आप उसके ऊपर विचार करते हैं। विचार करके अपने सेल्फ को बदलते हैं। कई तरह से बदलते हैं। कॉस्मेटिक सर्जरी भी कराते हैं। विचारों में बदलाव आता है। गीता में एक जगह बड़ा सुंदर कहा गया कि मनुष्य का जो अपना आत्मबोध या 'सेल्फ' है वही उसका सबसे बड़ा मित्र और सबसे बड़ा शत्रु है। जिसने अपने स्व को अपने स्व के द्वारा जीत लिया वह स्व उसका दोस्त और जो उससे हार गया वह उसका सबसे बड़ा दुश्मन हो जाता है। ध्यान दीजिए आप अपने स्व के ऊपर अगर नियंत्रण कर ले गए तो आप गाँधी भी हो सकते हैं, विवेकानंद हो सकते हैं, नेहरू हो सकते हैं, अम्बेडकर हो सकते हैं, कुछ भी हो सकते है। अगर आप अपने स्व पर नियंत्रण करते हैं, उस पर विजय प्राप्त करते हैं, आत्मजयी होते हैं तो आपसे बड़ा कोई नहीं होगा।

आत्मजयी होना कठिन काम है। अपने बारे में हर कोई अच्छा विचार रखता है। कोई भी अपने बारे में खराब विचार नहीं रखता है। हम यही मानते हैं कि जैसा भी हमारा रूप, रंग, नाक, नक्श, बुद्धि है हमसे अच्छा तो कोई और है ही नहीं। आत्म-श्लाघा इतना भयानक रोग है कि कुछ गड़बड़ हुआ तो हम यही कहते हैं कि यह हमने नहीं किया था दूसरों ने किया था। कुछ सही हुआ तो उसे हम किए थे। सारी सफलता का श्रेय लोग स्वयं को देते हैं और सारी विफलता का श्रेय दूसरे को देते हैं। हम अपने आप में इतने गहरे संलग्न हैं कि उसमें और किसी की जगह ही नहीं बचती है। हमारा दायरा जितना चाहे बढ़ता चला जाए दूसरे का उसमें प्रवेश वर्जित रहता है। अगर प्रवेश होगा तो मेरी अपनी शर्तों पर होगा। जैसा मैं चाहूँगा वैसा होगा। यह स्वकेंद्रीयता या आत्मरति बड़ी भयानक होती है। यह आज की जिंदगी का और आधुनिकता का परिणाम है। पश्चिमीकरण और बेतहाशा हो रहे शहरीकरण की परिणिति है।

हम भूल जाते हैं कि हम सब सचमुच में किसी बड़ी चेतन सत्ता के अंश हैं। विराट से हम हैं न कि विराट हम से है। हममें सारी क्षमतायें मौजूद हैं। ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है, अनुभव करने की जरूरत है, पहचानने की जरूरत है। इसके लिए आवश्यकता है कि आपका विस्तार हो। हम में चैतस शक्ति मौजूद है। उस शक्ति का संधान करना चाहिए और अपने को हेठा नहीं मानना चाहिए। सीमित

से आगे बढ़ कर विराटता का अनुभव ही आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता मोक्ष या भगवान के पास जाना नहीं है। ऐसा कुछ भी नहीं है कि मरने के बाद कहीं दूसरे लोक - स्वर्ग या नर्क में पहुँचते हैं। यही पर हैं स्वर्ग और नर्क। यहीं पर सब कुछ है। अपना अस्तित्व आप स्वयं ही परिभाषित करते हैं और यथार्थ में रूपायित करते हैं।

मकाँ बनते गाँव

अरुण तिवारी

झोपड़ी, शहर हो गई,
जिंदगी, दोपहर हो गई
मकाँ बड़े हो गये
फिर दिल क्यों छोटे हुए?

हवेली अरमाँ हुई,
फिर सुनसान हुई
अंत में जाकर
झगड़े का सामान हो गई।

जेबें कुछ हैं बढ़ी
मेहमाँ की ख़ातिर
फिर भी टोटे हो गये
यूँ हम कुछ
छोटे हो गये।
हा! ये कैसे हुआ?
सोचो क्यूँ हो गया?

अलाव साझे थे जो
मन के बाजे थे जो
बाहर जलते रहे
प्रेमरस फलते रहे
क्यूँ अब भीतर जले?
मन क्यूँ न्यारे हुए?
चारदीवारी में कैद क्यूँ
अब दुआरे हुए?
आबरू अब सुरक्षित घर में नहीं
अस्मत बेचारी
गली-गली है बिकी
हा! ये कैसे हुआ?
सोचो क्यूँ हो गया?

?

वृंदा ने कहा था

कमल कपूर

'समर पॉम सोसायटी' के अपने खूबसूरत अपार्टमेंट की बॉलकनी में बैठे वह नीले धुले खुले आसमान के शामियाने तले पसरे चटक हरे आलोक को देख-देख मुग्ध हो रहे थे और सोच रहे थे कि जिसने इस सोसायटी की कल्पना की होगी और जिसने इसे मूर्त रूप दिया होगा, दोनों ही उच्च कोटि के कलाकार रहे होंगे। उन्हें याद आ रही थी....सवा साल पहले की जून की वो दहकती दोपहरी, जब एक अदद मकान की तलाश में शहर भर की खाक छान कर वह अपने प्रॉपर्टी डीलर मिश्रा जी के साथ यहाँ आये थे और यहाँ का सौम्य सौंदर्य देख कर, बरबस उनकी जुबान से दो शब्द फिसले थे..."वाह! वाह!" यूँ लग रहा था उन्हें जैसे किसी ने अमरावती नगरी का एक हिस्सा काट कर यहाँ सजा दिया है।

"मिश्रा जी! आप कई दिनों से शहर भर में भटका रहे हैं मुझे। सबसे पहले यहीं क्यों नहीं ले कर आये?" शिकायती लहज़े में पूछा उन्होंने तो वह मुस्कुराए....व्यंग्यपूर्ण ढंग से, "मैंने सोचा कि शायद आप....आ....प.....की...."

"कि इस सोसायटी में घर खरीदने की औकात नहीं मेरी, यही सोचा होगा न आपने? बहुत गलत सोचा।" मिश्रा जी की बात काटी थी उन्होंने और वह झेंपते हुए खिसियानी हँसी हँसे थे, "अरे छोड़िये न और चलिये घर दिखाएँ आपको।"

अपार्टमेंट्स की ओर जाने वाले साफ-शफ्फाक संगमरमरी 'वॉक वे' के दोनों ओर क्रम से गुलमोहर और अमलतास के लाल-पीले पेड़ करीने से कतारबद्ध सजे खड़े थे। उस रहगुज़र से गुज़रते हुए वह बोले, "इस सोसायटी का नाम गुलमोहर या अमलतास सोसायटी होना चाहिये था। नहीं, मिश्रा जी?"

"बिलकुल नहीं जी! ये दोनों तो महीने-दो महीने के मेहमान होते हैं, जबकि पॉम तो बारहमासी है और पॉम की जितनी जातियाँ-प्रजातियाँ आपको यहाँ देखने को मिलेंगी, उतनी और कहीं नहीं।"

कुछ देर बाद वे दोनों चौथी मंज़िल पर स्थित एक अभिराम अपारट्मेंट के भीतर खड़े थे और वह मंत्र-मुग्ध से चहुँ ओर निहारते हुए सोच रहे थे कि जब मिश्रा जी इसकी तारीफ में जमीन-आसमान एक कर रहे थे तो उन्हें उनका कहना अतिश्योक्तिपूर्ण लग रहा था पर अब लगा कि कुछ कम ही तारीफ की थी उन्होंने। दो बेडरूम और एक लिविंग-रूम वाले घर में तीन खुली बॉलकनी थीं और अलमारियाँ, ड्रेसिंग-टेबल और स्टडी-टेबल वगैरह, सब दीवारों में फिट और किचन में कुकिंग-रेंज, माइक्रोवेव और फ्रिज देख कर हैरान रह गये थे वह, "ये सब भी....?"

उनकी बात पूरी होने से पहले ही बोल उठे थे मिश्रा जी, "जी! आजकल वैस्टर्न स्टाईल से हो रहा है सब। देखिये तो गैस भी पाईप-लाइन से है। राम कसम, भाभी जी खुश हो जायेंगी देख कर...वो देखिये खिड़की से पूरा आसमान नज़र आ रहा है। भाभी जी को कल ही दिखा कर नक्की कर दीजिये जनाब...."

'भाभी जी?' मन में हूक उठी थी । वह होतीं तो वह आते ही क्यों यहाँ। दर्द को सीने में ही दबा कर आहिस्ता से बोले, "ठीक है। यह घर मेरा हुआ। कब, कैसे और किस तरह पेमेंट करनी होगी मुझे?"

मिश्रा जी समझाते रहे और वह समझते रहे और समझ कर घर लौट आये। घर....वह घर उन्हें कभी भी अपना नहीं लगा था पर उस दिन तो पूरी तरह ही बेगाना लग उठा था। आँगन में गाड़ी खडी करके एक भरपूर नज़र उस नन्हीं सी बगिया पर डाली उन्होंने, जिसमें वृंदा की जान बसती थी और जो बारह महीने हरियाली और मौसमी फूलों से गुलज़ार रहती थी पर आज वह सूखी-सूनी और उजाड़ पड़ी थी। उन्हें तो याद भी नहीं कि अंतिम बार कब पानी पिया था इस बेचारी ने.... शायद उस दिन की सुबह, जिस दिन की साँझ इनकी मालकिन ने अंतिम साँस से पहले गंगा-जल पिया था। एक लंबी ठंडी साँस ले कर वह भीतर आ गये और सात कमरों वाले उस बड़े से घर में भूत की तरह भटकने लगे। ढेरों धूल-माटी लिपटे सामान से अटा पडा था हर कमरा। वृंदा की गृहस्थी की चीज़ें, अम्माँ-बाबूजी और वृंदा के दादी-दादू का भी। सामान की उस भीड़ से कबके उकताए हुए थे वह। वृंदा की अलमारी खोली तो लगा कि जैसे विविध रंगी साड़ियों के किसी शो-रूम के सामने खड़े हैं। पलकें नम हो आईं उनकी....वृंदा मुस्कुराते हुए जैसे मन की चौखट पर आ खड़ी हुई। फिर उस रात, अपने और वृंदा के बड़े से शीशम के पलंग पर लेटे वह तो नींद न आई आँखों में....सिर्फ वृंदा की बहुरंगी यादें ही आईं....जो उन्हें बरसों पीछे ले गईं....इस घर के बगल वाले घर में 'पेइंग गैस्ट' की हैसियत से आये थे वह...इस शहर के स्टेट बैंक में अस्सिटेंट मैनेजर के पद पर नियुक्ति हुई थी उनकी और जल्दी ही इस घर....'वृंदा-कुंज' की इकलौती संतान कनक-छरी सी सुंदर-सुकोमल वृंदा से दिल लगा बैठे थे और वह...? वह तो शिद्दत से दीवानी थी उनकी। बाबूजी को पता चला तो उन्होंने वृंदा के हाथ संदेसा भिजवाया कि अपने घर से किसी बड़े को साथ ले कर शीघ्र आओ पर वह अकेले पहुँचे तो बाबूजी ने रूखे स्वर में पूछा, "कहा था न कि किसी बड़े को साथ लाना, फिर अकेले क्यों आये?"

"जी! कोई नहीं है मेरा। अनाथालय में पला-पढ़ा हूँ, इसलिए...."

"शादी करना चाहते हो हमारी बिटिया से?"

"जी!"

"पहले यहाँ से.....हमारा मतलब है बगल वाले घर से बोरिया-बिस्तर ले कर कहीं शिफ्ट करो, फिर आगे बात करेंगे और सुनो घर थोड़ा ठीक-ठाक लेना, जहाँ हमारी बच्ची सुविधा से गृहस्थी बसा सके।"

और उनकी गृहस्थी बस गई वृंदा के साथ। वृंदा जितनी सुंदर थी, उतनी ही सुगढ़ गृहिणी भी सिद्ध हुई। अम्माँ-बाबूजी के लाड ने उसे बिगाड़ा नहीं, रेशम-सा सँवारा था। ज़िंदगी में पहली बार घर का सुख पाया था उन्होंने। फिर बरस भर बाद ही घर-आँगन जुड़वाँ खुशियों की किलकारियों से भर उठे। वृंदा ने दो गदबदे गुलगोथने प्यारे से बेटों को जन्म दिया था। बाबूजी तो जैसे फिर से युवा हो गये थे। हर पल कहते, "रिटायरमेंट के बाद का सारा वक्त अपने इन बालगोपालों के नाम लिख दिया जी हमने।"

पर वह वक्त काल ने उनके नाम लिखा ही नहीं था। एक सुबह दफ्तर गये थे खुद गाड़ी चला कर और साँझ लौटे एंबुलेंस में....जीवित नहीं मृत। कैसे सँभाला था उन्होंने अम्माँ जी, वृंदा और बच्चों को....अब याद करते हैं तो सिहर उठते हैं। सब कुछ सही तरीके से सँभलने-सँभालने के लिये उन लोगों को किराए का घर छोड़ इस घर में शिफ्ट होना पड़ा था। इतने बड़े घर में अम्माँ को अकेला कैसे छोड़ सकते थे वे लोग? उनका मन तो नहीं था पर सबके हित में यही निर्णय उचित था। हाँ! एक हल्की-सी

राहत की साँस जरूर ली थी उन्होंने कि जो किराये के रुपए बचेंगे वो बच्चों....उदय और उज्ज्वल की सही परवरिश में काम आयेंगे।

स्थितियाँ जल्दी ही सामान्य हो गईं। अम्माँ बच्चों में व्यस्त हो गईं और वृंदा ने घर की देख-रेख का पूरा जिम्मा ओढ़ लिया। ज़िन्दगी मुस्कुरा उठी थी खुल कर। बच्चे ज़हीन निकले। दसवीं पास ही की थी उन्होंने जब एक रात चुपचाप बिना किसी को कष्ट दिये और पाये अम्माँ भी बाबूजी के पास साँचे-धाम चली गईं। वृंदा बुरी तरह बिखरी फिर जैसा प्रकृति का नियम है धीरे-धीरे सिमट-सँभल भी गई।

अगले तमाम खट्टे-मीठे बरस जैसे किसी जादूगर के खेल-तमाशे की तरह झट-झट गुज़रते चले गये। उदय-उज्ज्वल उच्च शिक्षा के लिये यू. एस. गये तो वहीं के हो कर रह गये। जॉब भी वहीं कर लीं और ब्याह कर घर भी वहीं बसा लिये। कुल जमा सिर्फ तीन बार आये यहाँ, जिसमें से दो बार घर में नहीं, होटल में रहे। आगे जा कर तो दोनों ने हठ ही ठान ली, "अच्छी जगह नया घर लोगे तभी आयेंगे। उस फटीचर मोहल्ले के तबेले से घर में न बच्चे आने को तैयार होते हैं और न उनकी माएँ।"

"...और तुम दोनों सपूत?" अनायास ही किंचित कड़वाहट घुल आई थी उनके स्वर में।

"पापा! इस टोन में बात न करें आप। मुझे आपसे बात ही नहीं करनी, "कह कर फोन काट दिया था उदय ने।

उन्होंने दो-एक बार दबे स्वर में वृंदा से कही भी थी घर बेचने की बात, पर बिना भड़के उसने दृढ़ स्वर में कहे थे सिर्फ दो वाक्य, "शेखर! अब कही है पर फिर न कहना ऐसी बात। अम्माँ-बाबूजी की धरोहर हम कैसे बेच सकते हैं?"

वक्त के कदम कुछ और आगे बढ़े....न जाने क्यों वृंदा मुर्झाने लगी थी। उसकी भूख मरने लगी थी और वजन भी घटने लगा था। कुछ खाती तो पेट में हल्का सा दर्द उठता, जो धीरे-धीरे बढ़ता गया। जब-तब बिन बुलाए मेहमान सा बुखार भी चला आता। छुटपुट इलाज़ चलता रहा पर मर्ज़ कम होने की बजाय बढ़ता गया तो शेखर ने जिद्द करके मैदान्ता में पूरा चैकअप कराया तो.....जो रिज़ल्ट आया....उफ! उनके पाँव तले की जमीन खिसक गई जैसे, और सर पर मारक गाज़ गिर कर ध्वस्त कर गई ज्यों उन्हें.....लिवर का कैंसर था.... अपने आखिरी स्टेज पर। टूटे दिल की सारी किरचें बटोर कर अपनी सीधी-सरल वृंदा को फूलों की डाली-सा बाँहों में समेट कर घर ले आये थे....एक भयंकर युद्ध से जूझ कर जीतने का संकल्प लिये। डॉक्टर ने वृंदा की ज़िन्दगी की समय-सीमा भी बता दी थी....६ महीने से ले कर अधिकतम एक साल। यह बीमारी अपनी नाज़ुक-सी संगिनी से छुपा गये थे वह पर वह जान ही गई थी और कातर स्वर में बोली थी, "जैसे भी हो एक बार मुझे मेरे बच्चों से मिला दो शेखर प्लीज़।"

उसने फ़ोन कर बच्चों को सब बताया तो पल भर उस ओर खामोशी पसर गई, फिर उदय ने कहा, "पापा! अच्छे से अच्छा इलाज़ कराएँ मम्मा का। पैसे की फिक्र न करें। हम भेजेंगे जितना चाहिये।"

"पैसे की तो हमारे पास भी कमी नहीं बेटा! तुम्हारी माँ तुम दोनों से मिलना चाहती है।"

"पूरी कोशिश करेंगे पापा! पर कह नहीं सकते कब आ पायेंगे।" यह जवाब था उदय का।

हताश नहीं हुए थे वह और नर्मी से कहा था, "तुम लोग नहीं आ सकते तो बताओ। मैं जैसे भी हो उसे ही वहाँ ले आता हूँ।"

"जल्दबाजी न करें पापा! दो-चार दिन में बताते हैं न आपको।"

और फिर दस दिन बाद बताया "हम नौकरी पर सुबह सात बजे के गये शाम सात बजे लौटते हैं। बच्चे भी तब तक 'डे केयर' में रहते हैं। आप अनजाने देश में अकेले कैसे सँभाल पायेंगे सब? और फिर यहाँ मेडिकल सर्विस भी तो बहुत महँगी है।"

बेटों के जवाब की भनक वृंदा को लग गई थी....नतीज़न उसकी आँखों में पल-पल जलने वाले इंतज़ार के दीये भक्क् से बुझ गये। फिर उसने कभी उनका नाम भी नहीं लिया और फ़ोन आने पर उनसे कभी बात भी नहीं की। उस क्षति की पूर्ति शेखर ने उसकी जी जान से सेवा-टहल करने की कोशिश कर की। ज़िन्दगी भर वृंदा ने उन्हें सुख ही सुख दिया था, अब उनकी बारी थी। पैसे की कमी थी नहीं। चीफ जनरल मैनेज़र की पोस्ट पर थे सो बढ़िया वेतन था, मेडिकल का पूरा खर्चा मिलता था। वृंदा के पास अपना ही बहुत पैसा था....अम्माँ-बाबूजी का छोड़ा हुआ। जरूरत थी ऐसे किसी व्यक्ति की जो नि:स्वार्थ भाव से वृंदा की सेवा कर सके। बहुत सोचने पर वह उन्हें मिल ही गया.....कौन? वह ख़ुद। उनसे बढ़ कर कौन अपना था उसका? तुरंत निर्णय लिया और डेढ साल पहले ही रिटायरमेंट ले ली और जुट गये अपनी पत्नी-प्रिया की सेवा में। उसकी छोटी से छोटी इच्छा पर न्योछावर हो जाते। वह तनिक-सा 'हाय' भी करती तो सीने से लगा उसका दर्द सोखने की कोशिश करते। कीमो थेरेपी से जब उसके लगभग सारे बाल झड़ गये तो बॉब कट बालों की प्यारी सी विग ला कर उसके सर पर सजा दी।

बच्चे आने की बात करते रहे, बहाने बनाते रहे पर आये कभी नहीं और शायद वृंदा के जाने की बेला आ गई। एक सुबह जब वह उसका मुख पोंछ कर माथे पर सुर्ख बिंदिया टाँक रहे थे तो उसने उनका हाथ थाम लिया था और भीगे स्वर में कहा था, "शेखर! मेरी एक बात मानोगे....? एक नहीं दो, बल्कि तीन बातें।"

"कहो न मेरी वंदू! एक-दो-तीन नहीं सौ-हजार बातें मानूँगा और उम्र भर मानता ही चला जाऊँगा।" मुस्कुरा कर कहा था उन्होंने।

"अरे, उम्र ही तो नहीं बची अब मेरे पास। तीन ही बातें मान लेना.....काफी होगा। पर जब तक मेरी बात पूरी न हो आप बीच में एक शब्द भी नहीं बोलेंगे। खाओ मेरी कसम।"

"लो खाई तुम्हारी कसम।"

"पहली बात कि मेरे मरने की खबर बच्चों को न देना क्योंकि वो आयेंगे नहीं और इस बात से आप दुख पायेंगे और मेरी आत्मा तकलीफ...."

"न करो मरने की बातें वंदू! मैं...."

"अ...हं! देखिये कसम तोड़ रहे हैं आप, "उनकी बात काट कर मुस्कुराई थी वह फिर पल भर मौन रह कर आगे बढ़ी थी, "मेरा संस्कार विद्युत-दाह से हो। कोई कर्मकांड नहीं, मातमपुर्सी नहीं और अस्थि-विसर्जन भी नहीं। मैं अपना हर अंग दान करना चाहती थी पर यह मेरी कर्कट बीमारी.....और तीसरी बात....मैं जानती हूँ कि आप सदा इस घर में बेमन से रहे इसलिये मेरे जाने के बाद आप इसे बेच कर अपनी मनचाही जगह पर मनपसंद घर खरीद कर सुकून से रहें। मैंने यह घर आपके नाम कर दिया है....यह लीजिये, "कह कर उसने तकिये के नीचे से कागज़ात निकाल कर उनके हाथ में धर दिये थे और वह उसे सीने से लगा कर फूट-फूट कर रोये थे।" "न जाओ न मेरी वंदू मुझे छोड़ कर । तुम्हारे सिवा मेरा है ही कौन?"

रोई वह भी कम न थी। जाना वह भी नहीं चाहती थी पर चली गई....सप्ताह भर बाद ही कार्तिक पूर्णिमा की रात उनकी भोली चाँदनी चिर निद्रा में सो गई। और उन्होंने वही किया जो वह कह गई थी पर ना-ना करते भी कुछ संगी-साथी और पास-पड़ोस वाले आ ही जुटे थे उसके संग। फिर चौथे

दिन उज्ज्वल का फ़ोन आया....अंगारे बरसाता, "पापा! हमारी माँ चली गई और आपने हमें खबर भी नहीं की?"

"क्योंकि उसने ही मना किया था।"

"झूठ बकते हैं आप। वह ऐसा क्यों कहतीं? हम बेटे थे उनके।" उदय चिल्लाया था इस बार।

"यह बात उसने डायरी में भी लिखी थी। कहो तो स्कैन कर भेजूँ? लिखाई तो पहचानते हो न उसकी? या वह भी भूल गये?"

"हम आपको कभी माफ नहीं करेंगे और न ही आपको पापा कहेंगे।" दोनों के समवेत स्वर थे।

"न कहना, पर लगे हाथ एक खबर और सँभाल लो कि मैं यह घर बेचने जा रहा हूँ, जिसे तुम तबेला कहते हो।"

"ऐसा कैसे कर सकते हैं आप? वह घर हमारी मम्मा के नाम है, इस नाते हमारा हक है उस पर।"

"वह घर मेरे नाम कर गई है वह। और कुछ?"

"एक नम्बर के शातिर इंसान हैं आप। चालाकी से...."

आगे कुछ नहीं सुना उन्होंने और फोन काट दिया और उसकी तार भी निकाल दी। उसी दिन अपने मोबाइल का सिम भी बदल दिया उन्होंने और फेस बुक से भी जुदा हो गये और अब इस घर से भी जुदा होने की घड़ियाँ आ पहुँची थीं....यादों की घनी धुंध से बाहर निकलते हुए सोचा उन्होंने.....रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। उठ कर किचन में गये और चाय बना कर, प्याला हाथ में थामे बैठक में चले आये। चाय पीते हुए सोचने लगे कि अब वृंदा की तीसरी इच्छा पूरी करने जा रहे हैं वह। पहले वह घर ले लें फिर इस घर का सौदा करेंगे....इस घर का सौदा? जिसे वृंदा अपने पुरखों की धरोहर मान कर पूजती थी। क्यों बेचें यह घर वह? नहीं बेचेंगे इसे वह और इसे 'वृंदा-कुंज' से "वृंदा-वृद्धाश्रम" में बदलेंगे वह। इस तरह उन्हें भी जीने का एक मकसद मिल जायेगा। यह तो नहीं कहा था वृंदा ने लेकिन कुछ तो वह अपनी इच्छा से भी कर सकते हैं न!

सब कुछ महीने भर के भीतर हो गया। वह बिना कोई सामान लिये यहाँ आ गये फिर 'वृंदा-वृद्धाश्रम' की तैयारियाँ और कार्तिक-पूर्णिमा....वृंदा की पहली बरसी के दिन आश्रम का शुभारम्भ हो गया।

उस दिन....उस रात की यात्रा कर मन-पाखी फिर यहीं....अपनी इस जन्नत के नीड़ में लौट आया था। सुनहरी साँझ सुरमई हो कर ढलने की ओर उन्मुख थी कि सहसा उन्हें याद आया....तीन दिन बाद कार्तिक-पूर्णिमा है, उनकी वंदू की दूसरी बरसी और "वृंदा-वृद्धाश्रम" का पहला स्थापना-दिवस। एक बड़ा समारोह होने जा रहा है आश्रम में, जिसकी बहुत-सी तैयारी अभी बाकी है....चलना चाहिये मुझे, स्वयं से कहते हुए वह ताला लगा कर 'लिफ्ट' की ओर बढ़ गये।

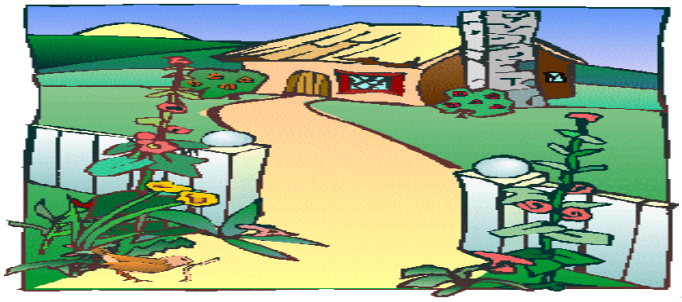

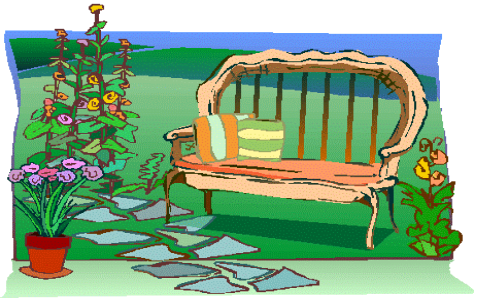

संस्कृत ब्रह्म वाणी क्यों है?

डॉ. मृदुल कीर्ति

अपरा और परा का संयोग ही सकल जगत का बीज है.
बीजं माम सर्व भूतानाम - गीता ७/१०
सब प्राणियों का अनादि बीज मुझे ही जान.
आठ भेदों वाली – पञ्च तत्त्व, मन, बुद्धि, अहम् यह मेरी अपरा प्रकृति है. – गीता ७–४/५

पञ्च तत्वों की तन्मात्राओं में ही इस जिज्ञासा के सूत्र छिपे हैं कि संस्कृत ब्रह्म वाणी क्यों है?

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पाँच स्थूल तत्व हैं. रूप, गंध, रस, स्पर्श और ध्वनि यह पाँच इनकी तन्मात्राएँ हैं. इन्हें सूक्ष्म महाभूत भी कहते हैं. इन पाँचों तत्वों में आकाश का ध्वनि तत्व अन्य सभी तत्वों में समाहित है. आकाश सर्वत्र है, क्योंकि ज्यों-ज्यों जड़ता घटती है, त्यों-त्यों गति उर्ध्व गामी होती है. आकाश की तन्मात्रा (निहित विशेषता) नाद है. नाद अर्थात ध्वनि, ध्वनि अर्थात स्वर. संस्कृत में 'र' का अर्थ प्रवाह होता है, 'स्व' अर्थात अपना मूल तत्त्व. 'नाद' आकाश की तन्मात्रा है जो आकाश की मूल तत्व शक्ति है, अपना मूल ध्वनि प्रवाह है. अतः आदि शक्ति का स्वर स्रोत, भूमा की ध्वनि है, तब ही उद्घोषित है कि 'नाद ही ब्रह्म है.'

नाद - आकाश की वह तन्मात्रा है, जो ब्रह्म की तरह ही शाश्वत, विराट, अगम्य, अथाह और आत्म-भू है. आकाश सर्वत्र है अतः नाद भी सर्वत्र है.

वाणी - नाद-शक्ति ही वाणी की ऊर्जा है और वाणी का सार्थक रूप शब्दों में ही रूपांतरित होता है. शब्द अक्षरों से बने हैं....अतः मन जिज्ञासु होता है कि अक्षरों का मूल स्रोत्र क्या है?
अक्षरों का मूल स्रोत - वासुदेव का उदघोष "अक्षरानामकारोस्मि" - गीता १०/ ३३. अक्षरों में अकार मैं ही हूँ और बिना आखर के शब्द संसार की रचना नहीं हो सकती.

कदाचित् अक्षर नाम इसीलिये हुआ कि 'क्षर' (नाश) 'अ' (नहीं) जिसका विनाश नहीं होता वह अक्षर है. अतः बोला हुआ कुछ भी नाश नहीं होता. सो जैसे ब्रह्म अविनाशी है वैसे ही अक्षर भी अविनाशी हैं. अतः "शब्द और ब्रह्म" सहोदर हैं, गर्भा शब्द ब्रह्मा की नाभि से अक्षरों का निःसृत माना जाना इसी तथ्य की पुष्टि है.

देह विज्ञान और आध्यात्म संयोजन के बिंदु संयोजन की जब बात होती है तो मूलाधार से सहस्त्रधार तक के बिन्दुओं में तीसरा बिंदु 'मणिपुर' क्षेत्र का है, जो 'नाभि' से प्रारंभ होता है. नाभि क्षेत्र दिव्य ऊर्जा से पूर्ण है और सृजन का भी स्रोत बिंदु है. गर्भस्थ शिशु को भोजन नाभि से ही मिलता है. वेदों में मूल स्रोत्र के सन्दर्भ में "हिरण्य गर्भा" शब्द प्रयुक्त हुआ है. ब्रह्मा की नाभि से निःसृत होने का यही संकेत है. यहीं पर 'कुण्डलिनी' है जो अनंत दिव्य मणियों से पूरित है. यहीं से आखर का उच्चारण भी आरम्भ होता है. पुष्टि के लिए आप 'अ' अक्षर का उच्चारण करें तो 'नाभि' क्षेत्र स्पंदित होता है. नाभि क्षेत्र को छुए बिना आप 'अ ' बोल ही नहीं सकते. अतः 'अकारो विष्णु रूपात' स्वयं सिद्ध है.

अ से म तक की अक्षर यात्रा ही 'ओम' का बोध कराती है, क्योंकि 'ओइम' में व्योम की सारी नाद शक्ति समाहित है.

सबसे अधिक ध्यान योग्य तथ्य है कि ओम के कोई रूप नहीं होते. परब्रह्म के एकत्व का प्रमाण भाषा विज्ञान के माध्यम से भी है.

बिना अकार के कोई अक्षर नहीं होता अर्थात बिना ब्रह्म शक्ति के किसी आखर का अस्तित्व नहीं है. आप 'क' बोलें तो वह क +अ = क ही है. यही 'अक्षरों' में ब्रह्म के अस्तित्व की अकार रूप में प्रमाणिकता है. अक्षरों का प्राण तत्व ब्रह्म ही है. यही वह बिंदु है जहाँ से वेद निःसृत हुए है क्योंकि नाद का श्रुति से सम्बन्ध है और हम श्रुति परंपरा के वाहक भी तो हैं. ब्रह्मा द्वारा ऋषि मुनियों को ध्वनि संचेतना से ही ज्ञान संवेदित हुए. ये अनुभूति क्षेत्र की उर्जा से ही अनुभव में उजागर होकर वाणी द्वारा व्यक्त हुए.

पाणिनि अष्टाध्यायी में लिखा है कि 'पाणिनी व्याकरण' शिव ने उपदिष्ट की थी.

'वेद' सुनकर ही तो हम तक आये हैं. तब ही वेदों को 'श्रुति' भी कहते है.

जैसे ब्रह्म अविनाशी है वैसे ही वाणी भी अविनाशी है. तब ही उपदिष्ट किया जाता है कि 'दृष्टि, वृत्ति और वाणी' सब प्रभु में जोड़ दो, क्योंकि वाणी कई जन्मों तक पीछा करती है. वाणी की प्रतिक्रिया से प्रारब्ध भी बनते है, इसकी ऊर्जा से वर्तमान और भविष्य भी बनते हैं.

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ :

संस्कृत भाषा का मूल भी दिव्यता से ही निःसृत है. सम और कृत दो शब्दों के योग से संस्कृत शब्द बना है. सम का अर्थ सामायिक अर्थात हर काल, युग में एक सी ही रहने वाली विधा. समय के प्रभाव से परे अर्थात कितना ही काल बीते इसके मूल स्वरुप में कोई परिवर्तन नहीं होता. जो स्वयं में ही पूर्ण और सम्पूर्ण है. कृ क्रिया 'कृत' के लिए प्रयुक्त हुआ है.

संस्कृत में सोलह स्वर और छत्तीस व्यंजन हैं. ये जब से उद्भूत हुए तब से अब तक इनमें अंश भर भी परिवर्तन नहीं हुए हैं. सारी वर्ण माला यथावत् ही है.

मूल धातु (क्रिया) में कोई परिवर्तन नहीं होता यह बीज रूप में सदा मूल रूप में ही प्रयुक्त होती है. जैसे 'भव' शब्द है सदा भव ही रहेगा, पहले और बाद में शब्द लग सकते हैं जैसे अनुभव, सम्भव, भवतु आदि.

संस्कृत व्याकरण में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता.

जैसे ब्रह्म अविनाशी वैसे ही संस्कृत भी अविनाशी है.

नाद की परिधि में आते ही 'अक्षर' 'अक्षर' हो जाते हैं, महाकाश में समाहित ब्रह्ममय हो जाते हैं. सूक्ष्म और तत्व मय हो जाते हैं. इस पार गुरुत्वमय तो उस पार तत्वमय, नादमय और ब्रह्ममय क्षेत्र का पसारा है.

मुक्तक

सरिता पन्थी

बिछुड़ता है मेरा मुझसे, कहो ये कारवाँ कैसे।
जो मरता है मेरे भीतर, रखूँ उसको रवाँ कैसे।
तुझे पाने की चाहत में, बहुत टूटा है ये दिल मेरा।
कि दामन पड़ गया छोटा, समेटूँ किरचियाँ कैसे।।

वो भागे छुप के जंगल से, लगी है शाम ढलने को।
दीया फिर जाँ से जाएगा, हुआ तैयार जलने को।
सफ़र मुश्किल हुआ जबसे, अकेले चल रहे हैं हम।
मिला कोई नहीं हमको, कदम दो साथ चलने को।।

जलाने को ये घर मेरा, चराग़ों ने जो ठानी है।
दीया मेरे ही हाथो का, अज़ब मेरी कहानी है।
उजालों की तमन्ना में, जलाये थे दीये मैंने।
जला जो घर मेरा ख़ुद का, हवा की मेहरबानी है।।

जलाती नहीं थी जली इसलिए।
जमीं होकर बेघर पली इसलिए।
महकने लगी थी वो खिलते हुए।
कि मसली गयी फिर कली इसलिए।।

ऐसा नहीं कि तेरे तलबगार हम नहीं।
तेरे ही प्यार के हुए हकदार हम नही।।
बस एक बार पढ़ के जिसे फेंक देते हो।
रद्दी समझ रहे हो वो अखबार हम नहीं।।

अनोखा साथी

डॉ. स्नेह ठाकुर

वसंत बड़े चुपके से, दबे पाँव, धीरे-धीरे शिशिर के घर में घुस रहा था. शिशिर ने उसे घुसते हुए अपनी अधमिचीं आँखों से देख तो लिया था पर बोला कुछ नहीं. चार महीने से अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए, अपनी ऋतु की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए प्रकृति के नियमानुसार क़हर ढाते-ढाते वह अधमरा हो गया है. अब वह न केवल सुस्ताना चाहता है वरन् अब तो वह कुंभकर्ण की तरह कई महीनों के लिए चैन की नींद सोना चाहता है. कितना कुछ परिश्रम करना पड़ता है उसे शिशिर ऋतु की कड़क शीतलता बनाए रखने के लिए....हड्डियों को कुल्फी की परतों की तरह जमाती हवा, हवा में ठंडी तेज़ धार के झोंके, पंजों में चाकू बाँधे मुर्गों की तरह घात लगाकर वार करते हुए उड़ते-फड़फड़ाते, हिमपात, क्या कुछ मशक्कत नहीं करनी पड़ी उसे....वह तो बिल्कुल निढाल हो जाता है. यह तो बस उसी के बूते का है. कोई और जरा करके तो दिखाए....पसीने-पसीने नहीं हो जाएगा....यह तो बस उसी में निहित अथक वज्र शीत-शिला की वज़ह से वह पसीना-पसीना नहीं होता है. पर कोई कब तक इस भयंकर शीत-शिला को उठाए रखेगा....न थकने की भी एक सीमा होती है. कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत कुछ समय के लिए ही तो उठाया था, आजीवन नहीं....न, न, बस अब और नहीं. अब मेरे भी विश्राम का समय आ गया है.

वसंत के आगमन की ख़ुशी में स्कूलों की एक हफ्ते की छुट्टियाँ हो गई हैं. पेड़ों पर चहुँ ओर नवजीवन का संदेश बिखेरती नव-कोपलें उभर आई हैं. सेव के वृक्षों पर गुलाबी, सफ़ेद फूल चटक पड़े हैं. जहाँ कई झाड़ियाँ पत्तों से भर रही हैं, वहीं फ्लावरिंग बुश की झाड़ियों पर पहले पीले-पीले मनलुभावन फूल आते हैं व बाद में हरी पत्तियाँ. प्रकृति की छटा भी अनोखी है. मैग्नोलिया भी अपने सफ़ेद-गुलाबी-जामुनी रंगों के फूलों की बहार बिखेरने की तैयारी में है. कैनेडा की विशिष्ट चार ऋतुओं की विशिष्टताएँ स्वयं में निराली हैं.

दोपहर की गुनगुनी धूप चारों ओर बड़े आराम से सुस्ताती हुई पसरी पड़ी थी. नीरा बाहर खेलने के लिए मचलने लगी. माँ और मौसी अपनी बातों में इतनी व्यस्त थीं कि बार-बार व्यवधान पड़ने पर आख़िर उसे बाहर खेलने की इज़ाज़त दे दी. फिर इसमें नुकसान भी क्या था. बच्चे तो बाहर खेलते ही हैं. मौसी के तो बच्चे हैं नहीं, मौसा भी घर नहीं थे....नीरा इस बात पर स्वयं ही मुस्कुरा दी. "पगली हूँ मैं....मौसा इस समय घर में कैसे होंगे? छुट्टियाँ तो बच्चों की हैं, बड़ों की थोड़ी न हैं. इसीलिए तो पापा नहीं आए. बस मम्मी के साथ वह ही आई है....पर पड़ोसियों के बच्चे तो बाहर खेल ही रहे हैं न. चलो उन्हीं से दोस्ती कर लेती हूँ. घर के अंदर तो मौसी का कुत्ता शेरू भी मुझे घास नहीं डाल रहा है. कितनी कोशिश करी मैंने पर यह तो खेलता ही नहीं मेरे साथ. आलसी की तरह पड़ा हुआ है."

नमिता और सुष्मिता दोनों बहनों की बातों का सिलसिला तो ख़त्म होने में ही नहीं आ रहा था. बातों का एक सिरा फिसलता तो दूसरा पकड़ में आ जाता. घर-गृहस्थी में बार-बार, जल्दी-जल्दी आना-जाना थोड़े ही न हो पाता है. बड़े दिनों बाद मिलना हुआ है तो माँ-बाप, भाई-भाभी, चाचा-चाची, रिश्तेदारों की बातें, व बचपन की यादें घुल-मिल बिखर-बिखर जा रही हैं. पुरानी बातें और ताजा ख़बरों की रूई धुनी जा रही है. कभी भूत वर्तमान पर हावी हो जाता है और कभी वर्तमान भूत पर. अंत में पुरानी स्मृतियों को परे धकेल भूत पर वर्तमान जमकर बैठ गया. होश तब आया जब शरीर

में थोड़ी-थोड़ी सिहरन होने लगी....बातों से नहीं, मौसम में छिटके शिशिर की शीतलता से. सूर्य की किरणें न जाने कब की बंद खिड़कियों के काँच खटखटाते निराश हो बहुत दूर चली गई थीं और जाते-जाते अपनी उष्णता भी साथ ले गई थीं. अब तो बस धूप के थोड़े-से टुकड़े दूर दरख्तों की फुनगी पर बैठे सारे दिन की थकान से सुस्ता रहे थे. पेड़ों के जरा-से हिलते ही धूप के वो टुकड़े असुरक्षित हो डगमगाते हुए एक-दूसरे की बाँहें थामे दुबक कर बैठने की कोशिश कर रहे थे.

तब अचानक दोनों बहनों को नीरा का ख्याल आया. अरे! नीरा तो अभी तक बाहर ही खेल रही है. नीरा की माँ नमिता नीता को पुकारते हुए घर के अंदर बुलाने के लिए बाहर चली गई व छोटी बहन सुष्मिता रसोई में नीरा के लिए दूध और अपने दोनों के लिए चाय बनाने. मिलन की, बातों की ख़ुमारी टूट रही थी. ध्यान आया कि अब तो पति के आने का भी समय हो गया है, अत: सुष्मिता ने दो कप की जगह तीन कप चाय का पानी चढ़ा दिया.

इसी समय बदहवास-सी नमिता घर में घुसी. वह बाहर नीरा को कहीं न पा बौखलाई-सी हकलाए जा रही थी. दो सेकेंड के लिए तो सुष्मिता भी सन्न रह गई फिर पैरों में चपलता भर बाहर की ओर चल पड़ी...."जायेगी कहाँ नीरा? बाहर ही तो खेल रही थी....चलो मैं देखती हूँ...." कहते-कहते वह चल पड़ी. और नमिता भी घिसटते पैर सुष्मिता के पीछे-पीछे हो ली.

दोनों बहनों ने अलग-अलग आवाज़ें दीं पर नीरा वहाँ हो, तो मिले! आख़िरकार सुष्मिता पड़ोस के घरों के बच्चों से पूछने गई, सोचा शायद नीरा उनके साथ चली गई हो. हालाँकि नमिता कहती रही कि अगर वह वहाँ जाती तो क्या हमसे पूछ कर न जाती? फिर भी सुष्मिता पड़ोसियों के दरवाज़े खटखटाने लगी.

आशुतोष दफ़्तर से लौट खुले घर के अंदर किसी को न पा अचरज में थे. कुछ छनछनाने की आवाज़ सुन उन्होंने रसोई के अंदर झाँका तो पाया चाय का पानी खौल-खौलकर समाप्त होने को था. स्टोव बंद कर वो बाहर निकले ही थे कि देखा दोनों बहनें हकबकाई-सी घर के अंदर आ रही हैं; पर हालात से नावाकिफ़ आशुतोष का उनके चेहरे की उड़ती हवाइयों पर ध्यान ही नहीं गया. वो पत्नी और साली साहिबा से मज़ाक करते हुए बोले, "आप दोनों कहाँ की सैर करके आ रही हैं?" दोनों की हकबकाई सूरत पर अभी भी उनका ध्यान न गया, वो अपनी ही झोंक में कहे जा रहे थे, "मैं तो सोच रहा था कि बड़ी साली जी आई हुई हैं तो आज चाय के साथ गरमागरम पकौड़े भी मिलेंगे पर यहाँ तो चाय का पानी भी जलकर राख़ हो गया है...." दोनों के रुआँसे चेहरे देख उन्हें लगा कि वो शायद कुछ ज़्यादा ही मज़ाक कर गए हैं. अत: अपनी समझ में वातावरण हल्का करने के लिए दूसरा मज़ाक कर बैठे, "अरे भाई! इसमें रोने की क्या बात है, चलो माफ़ किया. दोनों बहनें इतनी देर बाद मिली हो अब मेरी याद कहाँ रहेगी.... मैं तो दाल-भात में मूसलचंद बन गया हूँ...."

अब सुष्मिता ने आशुतोष की बात काटते हुए नीरा के न मिलने की बात बताई.

नीरा के बारे में सुन समय की गम्भीरता समझ आशुतोष अचकचाकर चुप-से हो गए. कुछ क्षणों में ही अचम्भे की क्षणिक निष्क्रियता से उबर वो भी सक्रिय हो नीरा की तलाश में जुट गए.

कुछ बच्चों से पता चला कि वो सब तो एक-एककर कबके अपने-अपने घर चले गए थे. एक बच्चे ने बताया कि आख़िर में वह ही बचा था. जब वह भी जाने लगा तो नीरा ने बाहर से झाँककर देखा और बोली कि माँ और मौसी तो अभी भी बातों में मगन हैं और उसे बाहर अच्छा भी लग रहा है, तो नीरा के कहने पर थोड़ी देर तो वह और उसके साथ खेला था पर जब उसे ज़्यादा भूख लगने लगी तो नीरा ने कहा कि तुम जाओ, मैं अभी और थोड़ी देर खेल कर अंदर जाऊँगी.

"नीरा गई कहाँ? धरती निगल गई, आसमाँ ख गया? नीरा इतनी छोटी नासमझ बच्ची भी नहीं है....हाँ, हाँ, छोटी है पर....पर इतनी छोटी भी नहीं....आठ साल की है."

अचानक नमिता के दिमाग में उमड़ा, "क्या किसी ने उसका अपहरण कर लिया है? उसे तो यहाँ कोई जनता भी नहीं! और तभी ख़याल आया कि क्या जानने वाले बच्चों को ही किडनैप किया जाता है. अरे! अपहरण तो जाने-अनजाने दोनों ही बच्चों का हो सकता है. पर नीरा की तो कोई आवाज़ ही नहीं आई!....आवाज़ कहाँ से आती! और क्या पता आवाज़ आई ही हो, मैंने ही न सुनी हो. मैं तो बस बातों में ही मगन थी....सारा क़सूर मेरा ही है." नमिता के धीरज का बाँध टूट रहा था. वह स्वयं को अनेक प्रकार से लताड़ रही थी.

इस बीच अचानक आशुतोष को कुत्ते का ध्यान आया. पूछने पर एक बच्चे ने बताया कि नीरा शेरू को भी खेल में शामिल करने की कोशिश कर रही थी. शुरू में तो वह नीरा को घास भी नहीं डाल रहा था पर बाद में काफी हिल-मिल गया था. आशुतोष को ताज़्ज़ुब हुआ कि शेरू को कई आवाज़ें देने पर भी वह कहीं नहीं दिखा. नीरा के साथ-साथ उसका भी कहीं अता-पता नहीं था.

अब तक पड़ोस के लोग भी ढूँढने में व्यस्त हो गए थे. नमिता के पाँव तो मन-मन भारी हो गए थे. उसे तो एक पाँव उठा दूसरा पाँव आगे रखने में ही मन भर का बोझ लग रहा था. वह तो क्रियाहीन, संज्ञाहीन-सी हो गई थी. हाँ! बस सुबकने की क्रिया लगातार जारी थी. सिर्फ़ वही रुकने में नहीं आ रही थी.

पुलिस को फ़ोन किया गया. उन्होंने नाम, पता, नीरा का पूर्ण विवरण ले खोज़बीन शुरू कर दी. छोटी बच्ची का मामला है. साँझ गहराने लगी थी फिर भी आस-पास की व पीछे की बड़ी-बड़ी झाड़ियों में जहाँ तक जा सकते थे, देख आए थे.

साँझ का धुँधलका धूप सोखने लगा था. पेड़ों की छायाएँ धीरे-धीरे दबे पाँव सरकते-सरकते पसरी धूप दबोच रही थीं. हवा में ठंड के दिनों की पगलाहट तो नहीं थी पर वो अभी भी बच्चों की तरह छोटे-छोटे झोकों में आती; अपनी दोनों मुट्ठियों में जितनी ठंड ला सकती, लाती और शैतान बच्चे की तरह बिन देखे कि कहाँ बिखरा रही है, जहाँ-तहाँ बिखरा कर भाग जाती. उसकी इस हरकत के बाद टुकड़े-टुकड़े बिखर गई शांति पुन: अपनी जगह जमने की कोशिश करने लगती.

साँझ का धुँधलका रात के अँधेरे में बदलने लगा था. अब तो सुबह का ही इंतज़ार किया जाना पड़ेगा. यह नई कॉलोनी बसी है. घरों के पीछे आबादी नहीं है, घना जंगल है. हैलीकॉप्टर से तो यह जंगल कल सुबह ही छाना जा सकेगा और कोई चारा नहीं.

नमिता का तो एक-एक क्षण गुज़रना मुश्किल था. सारी रात कैसे कटेगी! यह तो काटे न कटेगी. पर समय तो अपनी ही गति से चलता रहता है चाहे वह किसी के आनंद के क्षण हों या दु:ख के. समय को इससे कोई लेना-देना नहीं. हाँ! यह बात अलग है कि जिसके लिए यह समय आनंद की बेला का है उसके लिए घंटों भी उस व्यक्ति को कुछ क्षण ही महसूस होते हैं और जिस पर समय भारी दु:ख बन कर पहाड़ की तरह टूटता है, उसे क्षण भी घंटों समान लगता है. समय की गति पर किसी की भी भावनाओं का कोई असर नहीं पड़ता. समय ना ही किसी के लिए अपनी गति तेज करता है और ना ही किसी के भी लिए अपनी गति में विराम ही देता है. काल-चक्र हर परिस्थिति से अनजान, निस्पृह हो, अबाध गति से चलता ही रहता है....बस चलता ही रहता है....चरैवेति....चरैवेति.

नीरा की बाहर खेलने की ज़िद पर मौसी ने ही कहा था, "चल, बाहर ही खेलना है तो पहले कुछ खा तो ले."

नीरा देर से खाये हुए लंच से ही अभी निजात नहीं पा सकी थी, ऊपर से और खाने की बात....राम! राम! पर साथ ही वह बहस के चक्कर में पड़ अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहती थी. बाहर जाने की उतावली जो थी. अत: मौसी के हाथों से बिस्कुट का पैकेट का पैकेट अधीरता से पकड़, जेब में ठूँस, कमरे के दरवाज़े से बाहर भागते हुए बोली थी, "मौसी! बाहर खेलते-खेलते ही खा लूँगी मैं."

अब अचानक उन बिस्कुटों की याद कर नीरा ने उन्हें जेब से निकाला. ख़ुद भी खाना शुरू किया और शेरू की ओर भी बढ़ाया. पर शेरू तो उसे ही उन बिस्कुटों को बड़े भाई की तरह पुचकार कर अपने पंजों से खिलाने लगा जैसे उसे पता हो कि इन बिस्कुटों की इस समय नीरा को ज़्यादा ज़रूरत है. नीरा अचम्भे में थी कि क्या यह वही शेरू है जो उसे पहले पास ही नही फटकने दे रहा था और अब कैसे उसकी ममत्व-भरी रक्षा कर रहा है.

खेलते-खेलते जब वह घर से काफी दूर निकल आई थी तो शेरू ने उसे कई बार घर वापस घसीटना चाहा था पर नीता तो बस आगे ही आगे जाने के मूड में थी. उसे तो समय या स्थान का ज्ञान ही नहीं रह गया था. वह तो बस मस्ती में कभी इधर, कभी उधर दौड़-फिर रही थी. जब गिलहरी के पीछे दौड़ी और शेरू ने भौंक कर उसे भगा दिया तो वह उसका पेड़ पर चढ़ना ताकती रही. इतने में एक तितली पर नज़र पड़ी तो उसके पीछे चल दी. तितली जंगली फूल पर जा बैठी तो फूल देखने चल दी. शेरू बस चलता न देख पूँछ हिलाता उसके पीछे चल दिया. नीरा प्रकृति की छटा से मुग्ध, मोहित हो जंगल में अनजाने ही काफी अंदर तक घुसती चली गई थी. उसे तो बस इतना ही ध्यान था कि मौसी का घर कितना अच्छा है....नई आबादी है न....शहर में ऐसी प्यारी जगह कहाँ!

नीरा को होश तब आया जब अँधेरा गहराने लगा और तब उस पर डर हावी होना शुरू हो गया. धुँधलका जा चुका था. दिखना काफी कम हो गया था. नीरा ने इधर-उधर हाथ-पैर मारे पर अब तक वह पस्त हो चुकी थी. शरीर तो थका था ही पर साथ ही साथ भय से भी हाथ-पाँव फूलने लगे थे. रास्ता सूझ नहीं रहा था. शेरू ने भी एक-दो बार उसे घसीटने की कोशिश की मगर अब तक वह थक कर चूर हो चुकी थी. नीरा एक पेड़ के तने से पीठ सटा सुस्ताने के लिए बैठ गई. शेरू भी आज्ञाकारी सेवक की तरह उसके पास बैठ गया. नीरा ने ठंड से सिहर शेरू को अपने कोट के अंदर करना चाहा. शेरू ने कोई आपत्ति नहीं की और नीरा के कोट में घुस, दुबककर उसके शरीर को अपने फ़र की उष्णता से गर्मी पहुँचाने लगा.

यह जंगल की जगह थी. यहाँ ठंडी हवा घात लगाकर हमला करना ज़रूरी नहीं समझती थी. वह यहाँ स्वछन्द घूम रही थी अपना ही इलाका समझकर. हवा को भी बच्ची पर तरस आया अत: उसने अपनी क्रूर प्रकृति नहीं दिखाई. उस जगह खड़े हुए दरख़्तों ने भी नीरा की असहाय अवस्था को पहचाना. बहुत-से पेड़ों ने अपने जीवन-काल में ऐसा हादसा पहले कभी देखा ही न था. हाँ! कुछ ने बचपन में एक बुज़ुर्ग दरख़्त से ऐसा कुछ सुना ज़रूर था. बुज़ुर्ग पेड़ तो कब के जा चुके हैं. बस कुछ ही पेड़ों को उस हादसे की कहानी की बड़ी धुँधलाती-सी याद आ रही थी. पेड़ हवाओं से आवाज़ उधार ले, धीरे-धीरे फुसफुसा रहे थे कि किस तरह बच्ची को कम से कम तकलीफ़ हो. वे ऐसे हादसों के आदि तो थे नहीं. पहले तो वे स्वयं में ही मस्त झूमते-इतराते रहते थे और अब वे कुछ समय से महज़ सामने की बस्ती की इमारतों के मुंडेर कभी-कभार बीच-बीच में ताक लेते थे जहाँ सुबह-शाम यहाँ के पक्षी इधर से उधर और उधर से इधर चहचहाकर उड़ा करते हैं. हाँ! आजकल दिन में इंसानों और उनके बनाये तकनीकी यंत्रों की आवाज़ ज़रूर हवा की पालकी में बैठ यहाँ उतर-उतर आती है. आज नई आबादी के इंसानों की एक मासूम-सी बच्ची यहाँ भटक कर उनकी शरण में आ गई है, उसकी रक्षा तो करनी ही पड़ेगी न....

भय, असुरक्षा व साथ ही साथ शेरू द्वारा प्रदत्त उष्णता और सुरक्षा के हिंडोले में डोलती नीरा कब नींद के आगोश में पहुँच गई, उसे पता ही न चला.

नींद भी एक ही समय पर रहमदिल और बेरहम दोनों हो रही थी. जहाँ रहमदिल हो वह नीरा की पलकों में समा गई थी वहीं नमिता की पलकों पर अपनी पद-चापों का हल्का-सा बोझ भी नहीं पड़ने दे रही थी, जबकि उसने सुष्मिता और आशुतोष को कुछ क्षणों के लिए ही सही झपकियों के दामन में लपेट वर्तमान की छटपटाहट से राहत दी थी.

नमिता रतजगी आँखों से सुबह की किरणों का उतावली से इंतज़ार कर रही थी. सुबह की किरणें ही आशा की किरणों से बँधी थीं. मन ही मन नमिता, सुष्मिता और आशुतोष तीनों ही ईश्वर से प्रार्थना के स्वरों में बुदबुदाए जा रहे थे. इन तीनों के दरमियान शब्दों का आवागमन ज़रूरी नहीं था. वे भावना से भरी मौन की एक शब्दरहित भाषा में संवाद कर रहे थे.

आज पहली बार नमिता को महसूस हुआ कि रात इतनी लम्बी भी होती है. रात को सो जाओ और सुबह उठ जाओ....बस....इस बीच क्या इतना बड़ा अंतराल होता है! पहले तो लगता था कि अरे, अभी तो सोए हैं, अभी से इतनी जल्दी उठने का भी समय हो गया! आज पता चला कि नहीं, रात सचमुच लम्बी होती है.

उदास धुन की तरह फैला कुहासा छँटने लगा था. ऊषा अपनी रक्तिम किरणों से उसे भेद सतह पर आने के लिए हाथ-पैर मारने लगी थी.

सुबह की कुछ किरणों ने एक-साथ मिल कर दरवाज़े के शीशे वाले झरोखों पर दस्तक दी. वे भी शायद एक माँ का दु:ख नहीं देख पा रही थीं. अत: वे दरवाज़े के झरोखों को भेदने में जी-जान से जुट गईं. और उनके अंदर घुसते ही तीन नज़रों के जोड़े आपस में टकराए. तीनों के शरीर में हरकत हुई, लगा जैसे बेजान खिलौनों में किसी ने चाभी भरनी शुरू कर दी हो. नज़रों में आशा की क्षीण रेखा खिंचनी शुरू हुई. कान हैलीकॉप्टर की आवाज़, गड़गड़ाहट सुनने के लिए बेचैन होने लगे. पुलिस ने कहा था कि दिन चढ़ते ही हैलीकॉप्टर से जंगल की छानबीन करेंगे.

शेरू का न होना इस बात का साक्षी लग रहा था कि ज़रूर हो न हो वो दोनों जंगल में ही होंगे. अगर कोई और बात होती तो शेरू तो यहाँ होता. अगर अपहरण की बात होती तो शेरू ज़रूर भौंकता. अगर नीरा के साथ कोई जबर्दस्ती करता तो शेरू भौकने के अलावा कुछ और न कर पाने की दशा में ज़रूर ही घर के अंदर दौड़ता. यदि अपहरणकर्ता शेरू को मारता या कुछ खिला-पिलाकर बेहोश करता तो शेरू उस परिस्थिति में भी यहीं होता. अत: यह तो निश्चित दिखने लगा था कि नीरा और शेरू, दोनों साथ ही साथ हैं.

अंत में उन दोनों की जंगल में उपस्थिति ही ज़्यादा सम्भवजनक लग रही थी. नमिता, सुष्मिता व आशुतोष, तीनों ही हैलीकॉप्टर के आने की आशा में टकटकी बाँधे, बिन बोले भी बहुत कुछ कहते, इंतज़ार कर रहे थे. कुछ पड़ोसी भी मदद करने कोट, मफ़लर से लस्त उनके दरवाज़े पर पहुँच गए थे.

हैलीकॉप्टर की आवाज़ से शेरू के कान खड़े हुए. उसने सोइ हुई नीरा को चाटना शुरू किया, जैसे वह उस पर माँ का ममत्व-भरा हाथ फेर उसे उठा रहा हो. नीरा की अधखुली, ख़ुमारी से भरी आँखें एकदम से स्थिति का जायज़ा न ले सकीं पर शेरू के खींचने पर क्षण में ही भरमाई बुद्धि पर असुविधाजनक नींद की ख़ुमारी, दर्द से शरीर का कसमसायापन यकायक सामने आ गया. वह तुरंत ही सिर झटक कर उठी. अधखुली आँखें झटके से पूरी खुल गईं. शेरू का ममत्व-भरा गीलापन अभी भी उसके चेहरे पर अंकित था. नीरा ने भी उसी ममत्व से शेरू के शरीर पर हाथ फेरा.

अब तक शेरू कर्तव्य की सतर्कता में प्यार-व्यार की सीमा-रेखा लाँघ चुका था. वह बहुत सतर्क हो, कान खड़े कर, नीरा को खींचने लगा था, मानों अब उसके पास किसी और बात के लिए समय ही नहीं है. अब तो वह बस नीरा को घसीट कर जंगल से निकालने के चक्कर में था.

अब तक नीरा ने भी हैलीकॉप्टर की आवाज़ सुन ली थी पर फिर भी बाहर निकलने का रास्ता उसे नहीं दिख रहा था. वह समझ ही नहीं पा रही थी कि किस दिशा में कदम बढ़ाए.

शेरू नीरा को बाध्यता से खींचने लगा. जानकार बुज़ुर्ग की तरह शेरू नीरा के कोट के छोर को पकड़े, अपने साथ चलने के लिए बाध्य करता रहा. नीरा भी अपनी इन्द्रियों से ज़्यादा शेरू की इन्द्रियों पर, उसकी आवाज़ सुनने की क्षमता पर, उसकी सूँघने की शक्ति पर, धरती का कम्पन पहले ही जान लेने की क्षमता पर, ख़तरे से पहले ही ख़तरे की सम्भावना से चौकन्ना हो जाना आदि महसूस करने की क्षमताओं से प्रभावित थी. सबसे बड़ी बात तो शेरू ने ही तो सारी रात उसे गर्म व सुरक्षित रखा था. अत: नीरा शेरू की शक्ति, उसकी क्षमताओं पर विश्वास कर बिना किसी द्विविधा के शेरू के पीछे-पीछे चल पड़ी.

आख़िरकार शेरू नीरा को एक ऐसे खुले समतल स्थान पर ले आया जहाँ से हैलीकॉप्टर ने उन्हें देख लिया. कल नीरा की आँखों से भय के आँसू निकले थे और आज की सुबह आनंद के आँसू उमड़ पड़े. नीरा शेरू को अपने से चिपटा, बार-बार उसे चूम कहने लगी, "तुम कितने प्यारे हो. तुमने ही मेरी रक्षा की है. तुम तो अति प्रिय अनोखे साथी हो मेरे. चाहे कुछ भी हो, मैं तो तुम्हें मौसी से माँग ही लूँगी. अब हम कभी अलग नहीं होंगे."

शेरू भी दुम हिलाता रहा जैसे सब कुछ समझ रहा हो...."हाँ, हाँ, तुम ठीक कह रही हो. मैं अब सब जानता-समझता हूँ. हालाँकि शुरू में तुम्हारे आने पर तुमसे दोस्ती नहीं कर पाया. थोड़ी जलन हुई थी न. क्योंकि तुम्हारे आने पर सबने मुझे तो भुला ही दिया था. बस सब तुम्हीं से प्यार कर रहे थे. इसीलिए कई घंटे जलन के मारे गुस्से से भरा तुम्हें दूर भगाता रहा. पर जब तुमने मेरे दुर्व्यवहार के बावजूद भी बार-बार दोस्ती का हाथ बढ़ाया तो मेरी वह जलन, वह गुस्सा न जाने कब कपूर की तरह धीरे-धीरे उड़ गया और फिर मैं तुम्हारा दोस्त बन गया."

नीरा की आँखों में अपने प्रति कृतज्ञता व धन्यवाद का भाव देख शेरू आँखें झपझपा, गर्दन तिरछी कर, नीरा के मुँह से मुँह सटा कुछ इस तरह प्यार से गुर्राया मानों कह रहा हो कि, "अरे! स्कूल में पढ़ी हुई कुत्ते की वफ़ादारी की कहानियाँ भूल गई क्या? कुत्ता तो इंसान का सबसे वफ़ादार दोस्त होता है; फिर मैं तुम्हारी रक्षा कैसे न करता!"

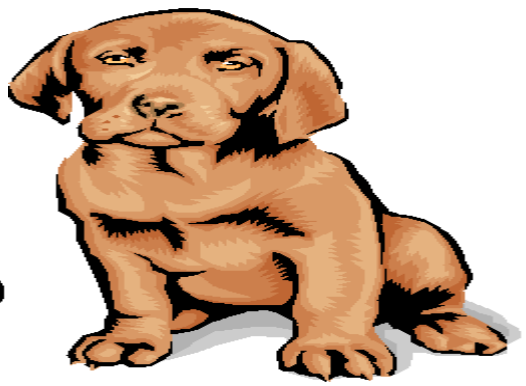

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

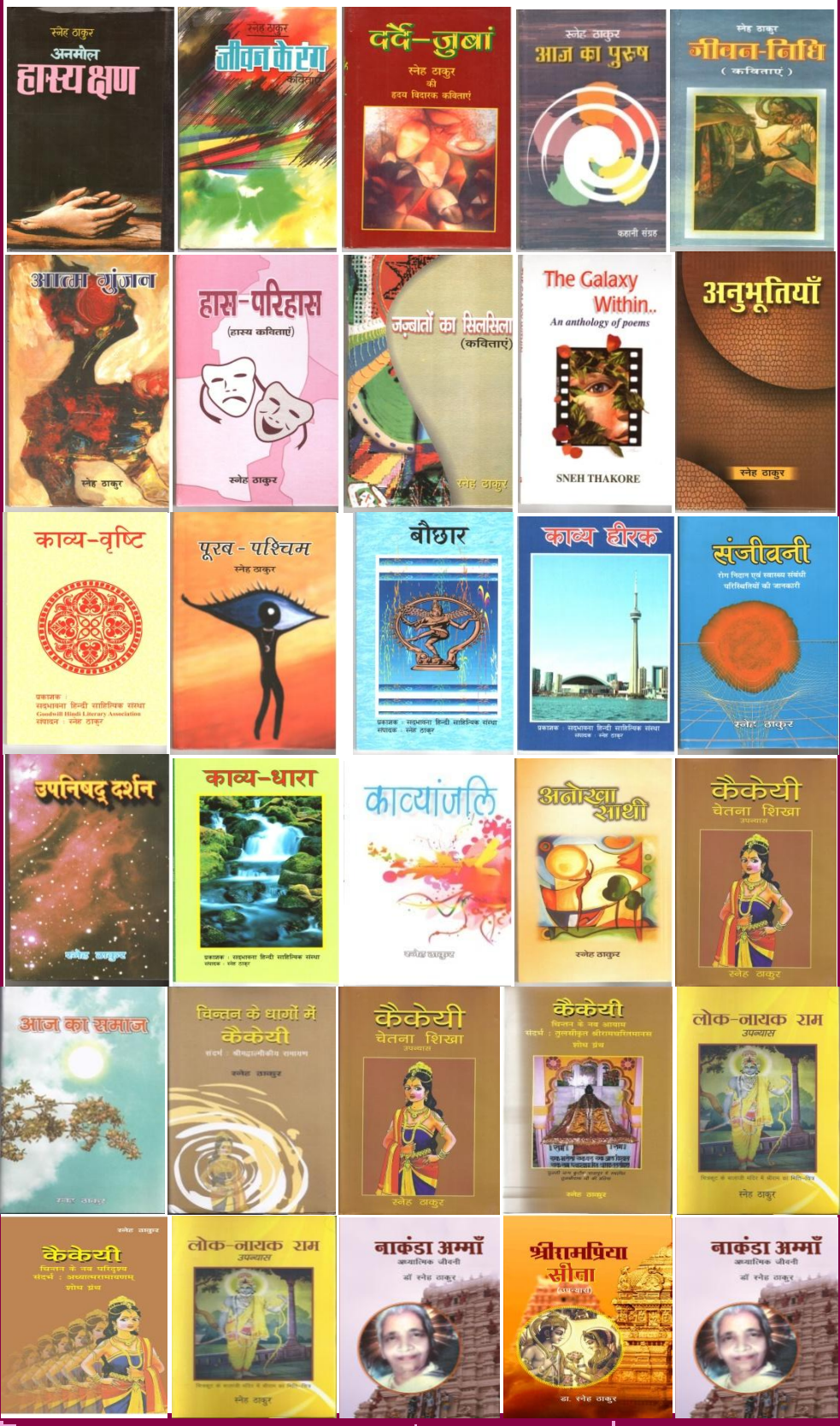

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित